अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किनका और क्यों!

संपादक

एच. एल. दुसाध-डॉ. अनिल यादव जयहिंद

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

दिल्ली

पहला संस्करण : 2019

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1,149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, सम्पर्क : 011-26125973, 9654816191
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

प्रशासनिक कार्यालय :
2/1467, आदिल नगर, कल्याणपुर,
लखनऊ-226022
मो. : 9654816191

© **प्रकाशक**

मूल्य : 100 रुपये

रचना : **अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किनका और क्यों!**
संपादक : एच. एल. दुसाध- डॉ. अनिल जयहिंद
आवरण : डॉ. लाल रत्नाकर
शब्दांकन : कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पित

साहेब कांशीराम के 'वे बैक टू द सोसाइटी' मंत्र से दीक्षित प्रखर आंबेडकरवादी मा. ***राजेन्द्र पाल गौतम*** *को जो दिल्ली सरकार में मंत्री रहते बहुजन कल्याण का एक नया अध्याय रच रहे हैं?*

अनुक्रम

संपादकीय —*डॉ. अनिल जयहिन्द* 7

अध्याय-1 : सैद्धांतिक खण्ड

अवसरों और संसाधनों पर पहला हक वंचित वर्गों का! 13
—*एच.एल. दुसाध* 13
एक नया विचार : रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर! 13
रिवर्स रोस्टर के विचार को मिला व्यापक समर्थन 14
रिवर्स रोस्टर प्रणाली के चैम्पियन पैरोकार : सांसद धर्मेन्द्र यादव 15
संसाधनों पर पहला हक किसका? 18
अवसरों और संसाधनों पर पहला हक : सवर्णों या एसटी-एससी-ओबीसी का! 19
आजादी के 70 साल बाद : सवर्ण ही देश के मालिक 20
दुनिया की हर अदालत 13 प्वाइंट रोस्टर उलटने का समर्थन करेगी 21
13 प्वाइंट रोस्टर उलटना क्यों जरूरी है! —*एच.एल. दुसाध* 23
मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या : आर्थिक और सामाजिक विषमता! 23
आर्थिक और सामाजिक विषमता पर बाबा साहेब की चेतावनी! 23
विकास से वंचित : दलित-आदिवासी 24
अवसरों के बंटवारे में सवर्णों को प्राथमिकता 25
मोदी की सवर्णपरस्त नीतियों का कमाल! 26
धनार्जन के स्रोतों के पुनर्वितरण की जरूरत 26
मोदीराज में विस्फोटक बिन्दु पर पहुँची : आर्थिक असमानता! 27

अध्याय-2 : व्यावहारिक खण्ड

साक्षात्कार की प्रश्नावली 31
अवसरों और संसाधनों का पहला हक किनका और क्यों?
—एच. एल. दुसाध 31

साक्षात्कार

कपिलेश्वर प्रसाद	31
डॉ. रमेश प्रेमी	35
के. नाथ	38
सुभाष गौतम	45
फागू लाल	47
राजवंशी जे. ए. अम्बेडकर	49
डॉ. अनिल कुमार	52
डॉ. जवाहर पासवान	56
बुद्ध शरण हंस	59
हीरालाल राजस्थानी	63
डॉ. केदार कुमार मंडल	65
विद्या गौतम	69
अलका जिलोया	70
बी.आर. विप्लवी	74
डॉ. पुष्पा संखवार	80
डॉ. विजय कुमार त्रिशरण	82

संपादकीय

साथियों, पिछले लगभग एक वर्ष में हमारे देश में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं हैं, जिनसे ज़ाहिर होता है कि बहुजनों को प्राप्त संवैधानिक आरक्षण के प्रति शासक वर्ग के दिल में बेईमानी है। पहले 13 पॉइंट रोस्टर लागू किया गया। इसके द्वारा आरक्षण को व्यवहारिक रूप से समाप्त ही कर दिया गया। बहुजन समाज ने आक्रोशित और उद्वलित होकर बड़े पैमाने पर इसका प्रतिकार किया, और 5 मार्च 2019 को अभूतपूर्व भारत-बंद हुआ। बहुजनों के गुस्से को देखते हुए सरकार द्वारा 13 पॉइंट रोस्टर वापिस ले लिया गया। लेकिन अभी 12 सितम्बर, 2019 को उत्तराखंड सरकार ने नया रोस्टर तय करते हुए अनुसूचित जाति के पद को पहले स्थान से हटा कर छठे स्थान पर कर दिया। रोस्टर के शुरुआती पांच पद सामान्य श्रेणी के लिए रखे गए। यह एक और बेईमानी है।

13 पॉइंट रोस्टर का मुद्दा जब गरम था तब उन दिनों सुप्रसिद्ध बहुजन पत्रकार महेंद्र यादव ने यह महत्वपूर्ण मुद्दा सोशल मीडिया पर उठाते हुए रिवर्स रोस्टर प्रस्तावित किया था जिसमें रोस्टर प्रणाली में बहुजनों को प्राथमिकता देने की बात कही थी। इसी बात को तत्कालीन सांसद धर्मेन्द्र यादव ने लोकसभा से सड़क तक जोर-शोर से उठाया था। दुनिया भर के सभ्य समाजों और देशों में न्याय-शास्त्र का सिद्धांत एक ही है, और वह है कि कमज़ोरों, वंचितों को सभी क्षेत्रों में प्राथमिकता दी जाए। फिर भारत में इसे क्यों नहीं माना जाता?

यक्ष-प्रश्न यह है कि "देश में उपलब्ध अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किनका और क्यों है?" एक बार यह मूल और बुनियादी प्रश्न देश में हमेशा की लिए तय हो जाना चाहिए। इसी बहस को प्रस्तुत पुस्तक में उठाया गया है। भारतीय समाज को गहराई से समझने वाले महान चिन्तक, विचारक एच. एल. दुसाध ने, जो भारत में डाइवर्सिटी मैन के नाम से जाने जाते हैं, इसी प्रश्न को खड़ा किया है। इस विषय पर उन्होंने अपनी बात पुस्तक के सैद्धांतिक खंड में रखी है। इसी प्रश्न को वे देश के अन्य स्थापित समाजशास्त्रियों एवं चिंतकों के पास ले कर गए। भारत के कोने-कोने से ऐसे 16 जाने-माने चिंतकों के इस विषय पर विचार

भी इस पुस्तक में शामिल हैं। सभी चिन्तक एकमत हैं कि अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ बहुजनों का ही बनता है। जैसे कोई भवन इंटों से बनता है, उसी प्रकार देश नागरिकों से बनता है। जैसे किसी भवन की 85% ईंटें यदि कमज़ोर होंगी, तो वह भवन भी कमज़ोर होगा, ठीक उसी प्रकार अगर किसी देश के 85% नागरिक वंचित और कमज़ोर होंगे तो वह देश भी कमज़ोर होगा। यदि भारत को सशक्त और समृद्ध बनाना है, तो सदियों से हाशिये पर धकेले गए 85% बहुजनों को भी सशक्त एवं समृद्ध बनाना ही होगा।

लेखक, सामाजिक कार्यकर्त्ता कपिलेश्वर प्रसाद का मानना है कि बहुसंख्यक वर्ग का राजनीतिक बिखराव, उनके अपने वाज़िब हक़ पाने में बाधा है। वह आज भी मानसिक गुलाम, बेगारी की मानसिकता और हीन भावना से ग्रसित है। भोपाल के डॉ. रमेश प्रेमी का कहना है कि जब तक भारत के संविधान के अनुसार व्यवस्था लागू नहीं की जाएगी, तब तक बहुजनों को पूर्ण न्याय नहीं मिल सकता। कानपुर में रहने वाले के. नाथ का कहना है कि संसाधनों और अवसरों पर पहला हक़ आदिवासियों का बनता है, क्योंकि आदिवासी ही सबसे कमज़ोर हैं और 21वीं सदी के आज के दौर में भी वे रोटी की लड़ाई लड़ रहे हैं। बाल्मीकि समाज जिसे व्यवस्था के षड्यंत्र ने उन्हें उनके व्यवसाय से बाँध के रखा है, उनका भी पहला हक़ बनता है। और बिना लड़ाई कुछ प्राप्त नहीं होगा। दिल्ली के सुभाष गौतम का कहना है कि व्यवस्था का पूरा ताना-बाना बहुजनों को ज्ञान के क्षेत्र से बाहर करने के लिए बुना गया है। मक़सद बहुजनों को शक्ति-स्रोतों से वंचित करना और सवर्ण वर्चस्व क़ायम रखना है। गोरखपुर के फागू लाल का कहना है कि वैदिक काल से भारत में पुजारी बनने का अधिकार जन्म से निर्धारित होता आया है। भारतीय मठ-मंदिर सत्ता, पूँजी, प्रभुत्व के केंद्र हमेशा से रहे हैं। 20 लाख कुल मंदिरों में अनेकों ऐसे हैं जिनकी वार्षिक आये करोड़ों रूपए है। उच्चतम न्यायलय के निर्णय के बावजूद भी केवल द्विज को ही पुजारी बनने का एकाधिकार है।

सिवान के राजवंशी जे. ऐ. अम्बेडकर का कहना है कि बहुजन अपने अधिकारों की लड़ाई लगभग हार चुका है। लेकिन कबूतर की तरह 'जय-भीम' और 'बाबा साहिब अमर रहें' के नारों के पीछे अपनी हार छुपा रहा है। उनका मानना है कि वक्त का तकाज़ा है कि लड़ाई जीतने के लिए रणनीति और नेता बदला जाए। जरूरत ब्राह्मण से नहीं ब्राह्मणवाद से लड़ने की है। दिल्ली के डॉ. अनिल कुमार का कहना है कि निर्विवाद रूप से देश के संसाधनों और अवसरों पर पहला अधिकार बहुजनों का है, लेकिन प्रकृति चयन नियम के अनुसार यह हमें कोई देगा नहीं, बल्कि हमें खुद लेने के क़ाबिल बनना होगा। मधेपुरा से डॉ. जवाहर पासवान का कहना है कि संविधान सौंपने के पूर्व संविधान निर्माता डॉ. आंबेडकर ने राष्ट्र को चेतावनी देते हुए कहा था कि हमें जल्द से जल्द आर्थिक और सामाजिक विषमता

का ख़ात्मा कर लेना होगा, वरना विषमता से पीड़ित जनता उस लोकतंत्र के ढांचे को ध्वस्त कर सकती है, जिसे संविधान निर्मात्री सभा ने बड़ी मेहनत से बनाया है, इसलिए बहुजनों को प्राथमिकता देना परम आवश्यक है। पटना के बुद्ध शरण हंस का कहना है कि बुद्धोतर काल से भारत देश पर दुष्ट ब्रह्मिणों के आतंक का राज क़ायम रहा है। मनुस्मृति द्वारा अवसरों और संसाधनों से बहुजनों के हक़ों को वंचित किया गया। आज भी देश की सत्ता पर ब्राह्मणशाही क़ायम है। अवसरों की समानता न देकर सरकार संविधान के प्रावधानों की खुली अवेहलना कर रही है। अवसरों और संसाधनों पर अपना वाज़िब हक़ पाने के लिए बहुजनों को मरने-मिटने वाला आन्दोलन चलाना होगा। दिल्ली के हीरालाल राजस्थानी का कहना है कि सदियों से बहुजनों को उपेक्षित रखा गया। मालिक और दास का समाज बनाया गया। हम आज भी वहीं खड़े हैं जहाँ बाबा साहेब हमें छोड़ के गए थे। बहुजनों का ही पहला हक़ बनता है। दिल्ली के डॉ. केदार कुमार मंडल का कहना है कि अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किसका, यह प्रश्न वैसा ही है जैसे कोई पूछे कि माँ पर पहला हक़ किसका? स्वाभाविक है कि माँ पर पहला हक़ उसके जने पुत्रों का होगा। आर्य-अनार्य की दृष्टि से देखें तो भारत पर पहला हक़ अनार्य का ही बनता है। हरिद्वार से विद्या गौतम का मानना है कि हम उद्देश्यहीन आन्दोलन चला रहे हैं। हम अपना सही लक्ष्य नहीं तय कर पा रहे। बाबा साहेब ने भी आर्थिक और सामाजिक असमानता को दूर करने की चेतावनी दी थी। इसलिए हिस्सेदारी-भागीदारी आबादी के अनुपात में होनी चाहिए। दिल्ली की अलका जिलोया का मानना है की अवसरों और संसाधनों पर पहला अधिकार उनका होना चाहिए जिन्होंने अवसरों और संसाधनों की वंचना सदियों सर्वाधिक झेली है। डाइवर्सिटी का अभाव लोकतंत्र के लिए घातक साबित हो सकता है, लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकता है। गोरखपुर के बी. आर. विप्लवी का कहना है कि सभी समाजों में प्राकृतिक रूप से दुनिया के जो भी संसाधन हैं, वे न केवल मनुष्यों बल्कि सभी प्राणियों के लिए समान रूप से भोग्य हैं। केवल जंगली बर्बर व्यवस्था में ही ताकत के दम पर अवसर और संसाधनों का अतिक्रमण और एकाधिकार होता रहा है। भारतीय सन्दर्भ में वंचित-शोषित वर्गों को उनके वाज़िब हक़ देकर उनका त्वरित गति से विकास करना ही होगा। लखनऊ से डॉ. पुष्पा संखवार का मानना है कि वर्तमान में जिस बड़े पैमाने पर आर्थिक और सामाजिक विषमता फ़ैली है, उसे देखते हुए अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किसका हो, इससे बड़ा सवाल हो ही नहीं सकता। अगर विकास की दिशा न्यायपूर्ण नहीं हुई, तो आर्थिक और सामाजिक विषमता की समस्या उस स्तर तक पहुँच जाएगी जहाँ उथल-पुथल और लोकतंत्र के ढांचे का विस्फ़ोट अवश्यम्भावी हो जायेगा। इसलिए समय रहते अवसरों और संसाधनों का न्याय-पूर्ण बंटवारा हो ही जाना चाहिए। झारखण्ड गढ़वा के डॉ विजय

कुमार त्रिशरण का मानना है कि गैर-बराबरी पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के कारण भारतीय समाज दो भागों में बंटता है, 15% शासक और 85% शोषित। समताप्रधान समाज के निर्माण के लिए इस व्यवस्था को उलटना जरूरी है, जो भागीदारी सिद्धांत से ही संभव है। वरना भारत में जनक्रांति का माहौल बन चुका है, जिसकी झलक 1 जनवरी 2018 को कोरेगांव में, 2 अप्रैल 2018 के और 5 मार्च 2019 के भारत बंद में दिख चुकी है।

कुल मिलकर सभी एकमत हैं कि अवसरों और संसाधनों पर पहला वाज़िब हक़ सदियों से शोषित-वंचित बहुजनों का है। लेकिन दुनिया का इतिहास बताता है कि शासक वर्ग कभी भी शोषित वर्ग को उनका वाज़िब हक़ इसलिए नहीं देता क्योंकि यह न्याय का तकाज़ा है। हमेशा हक़, ताक़त और कुर्बानी से ही मिलते हैं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है, If we keep on doing the same thing, we shall keep getting the same results. अर्थात यदि हम वही करते रहे, जो पहले भी करते रहे हैं, तो परिणाम भी वही मिलते रहेंगे, जो पहले मिलते रहे हैं। अलग नतीजे निकलें, इसके लिए हमें कुछ अलग करना भी होगा। शोषितों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी, अपना रवैय्या बदलना होगा। अपनी सोच और रणनीति में क्रान्तिकारी बदलाव लाना होगा। डिस्कवरी चैनल पर हम हर दिन देखते हैं कि जंगल में एक हज़ार भैंसों के झुण्ड के पीछे 10 भेड़िये टूट पड़ते हैं। भैंसों के बड़े-बड़े सींग हैं, जबर्दस्त संख्या बल है, फिर भी भैंसों का झुण्ड रक्षात्मक रवैय्या अपनाता है। हर भैंस स्वार्थी हो कर केवल खुद को बचाने के लिए दौड़ पड़ती है। 10 भेड़ियों में एकता है, स्वार्थ की बजाय टीम भावना है, आक्रामकता है, जज्बा-ए-कुर्बानी है, इसलिए हर रोज़ भेड़िये विजयी होते हैं, हर दिन उनका ही राज जंगल में चलता है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि मनुष्य भी एक सामाजिक जानवर है। जीवविज्ञान भी मनुष्य को स्तनधारी जीव ही मानता है। यदि बहुजनों को भी शासक बनना है, तो शासकीय मानसिकता लानी होगी। आक्रमकता लानी होगी, एकता, कुर्बानी, आपसी विश्वास और टीम भावना लानी होगी। वरना आने वाली सदियों तक भी वही होता रहेगा जो बीती सदियों से होता चला आया है। जैसा जीवन हमारे पुरखों ने जीया है, वैसा ही जीवन हमारी अगली पीढियां और नस्लें भी जिएंगीं। इसलिए ही बाबा साहेब ने कहा था कि अपने घर की दीवारों पर लिख दो, कि हम इस देश के शासक बनेंगे। क्योंकि कड़वा सत्य यह है कि बिना शासक बने, न्याय नहीं मिलेगा।

और अंत में! साक्षात्कार दने वाले विद्वानों के प्रति अशेष आभार प्रकट करते हैं। उनके साक्षात्कार के बिना यह पुस्तक अपने मकसद में कामयाब नहीं हो पाती।

14वां डाइवर्सिटी डे **–डॉ. अनिल जयहिन्द**

अध्याय-1

सैद्धांतिक खण्ड

अवसरों और संसाधनों पर पहला हक वंचित वर्गों का!

–एच.एल. दुसाध

भारतवर्ष आरक्षण का देश है। अगर महान समाज विज्ञानी कार्ल मार्क्स के अनुसार अगर अबतक विद्यमान समाजों का लिखित इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है तो भारत में वह आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष का इतिहास है। इसलिए यहाँ शक्ति के स्रोतों पर काबिज विशेषाधिकारयुक्त सुविधासंपन्न तबकों और वंचित बहुजनों के मध्य समय-समय पर आरक्षण पर संघर्ष संगठित होते रहता है, जिसमें 7 से 22 जनवरी, 2019 के मध्य कुछ नए अध्याय जुड़ गए। 7 जनवरी को मोदी सरकार ने नाटकीय रूप से गरीब सवर्णों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय लिया जिसे अगले दो दिनों में संविधान में आवश्यक संशोधन करते हुए उस विधेयक को संसद में पारित भी करा लिया। त्वरित गति से पास हुए सवर्ण आरक्षण के विस्मय से राष्ट्र उभर भी नहीं था कि 22 जनवरी को विभागवार आरक्षण पर मोहर लग गयी। अब आरक्षित वर्ग इस आरक्षण को लेकर सड़कों से लेकर संसद तक आंदोलित है। आन्दोलन के दबाव में केंद्र सरकार द्वारा यह आश्वासन दिए जाने के बावजूद कि रिव्यू पिटीशन खारिज होने पर सरकार अध्यादेश लाएगी, आन्दोलनकारी 13 प्वाइंट रोस्टर के खात्मे और 200 प्वाइंट रोस्टर लागू करवाने के लिए आर-पार की लड़ाई में लगे हुए हैं।

एक नया विचार : रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर!

बहरहाल वंचित आरक्षित वर्गों के छात्र और गुरुजन 13 प्वाइंट रोस्टर की जगह पहले वाला 200 प्वाइंट रोस्टर लागू करवाने की जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें अब एक नया आयाम जुड़ने लगा है। वंचित वर्गों के ही कुछ नेता और बुद्धिजीवी यह

मांग उठाने लगे हैं कि 200 प्वाइंट लागू करवाने की लड़ाई लड़ने के बजाय 13 प्वाइंट रोस्टर को ही सशर्त मान लिया जाय। उनकी शर्त यह है कि रोस्टर 13 प्वाइंट वाला ही रहे, किन्तु इसे रिवर्स अर्थात उल्टा कर दिया जाय। अर्थात जो भी भर्ती निकले उसमें 1-3 तक क्रमशः एसटी, एससी और ओबीसी को अवसर मिले। चौथे नंबर से सामान्य वर्ग की भर्ती हो। कुख्यात 13 प्वाइंट रोस्टर को रिवर्स करने की पहलकदमी वरिष्ठ पत्रकार व अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कई किताबों के अनुवादक Mahendra Yadav ने फेसबुक के जरिये की है, जिसे बड़ी तेजी से व्यापक समर्थन मिलता नजर आ रहा है। उन्होंने 7 फरवरी को अपने टाइम लाइन पर यह पोस्ट डाला-'आंदोलन तो ठीक है, लेकिन अपनी मांग भी स्पष्ट होनी चाहिए। 200 प्वाइंट रोस्टर भी किस काम का था! अगर काम का होता तो कुछ तो फायदा दिखता। अब तो रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर ही चाहिए, जिसमें पहले एसटी, फिर एससी और ओबीसी, उसके बाद जनरल का नंबर आए। फालतू के 200 प्वाइंट रोस्टर की कोई जरूरत नही।'

रिवर्स रोस्टर के विचार को मिला व्यापक समर्थन

उनके उस पोस्ट को 208 लोगों ने लाइक और 7 लोगों ने शेयर किया था, जबकि 22 लोगों ने कमेंट्स दिया। भारी आश्चर्य की बात थी कि 22 में से सिर्फ 3 लोगों ने ही कुछ उदासीनता दिखाई थी, हालाँकि उन्होंने महेंद्र यादव जी के विचार को खारिज भी नहीं किया था। इनमें चर्चित राजनीति वैज्ञानिक Arvind kumar का कमेन्ट था—'फिलहाल तो 200 प्वाइंट रोस्टर ही बच जाये, वही बहुत है। विश्वविद्यालयों ने 200 प्वाइंट रोस्टर भी लागू नहीं किया था, इसलिए इसका कोई फायदा भी नहीं दिखा।' अरविन्द कुमार की ही बात का कुछ-कुछ समर्थन करते हुए dharmveer yadaw ने कहा था-'आपकी बात सही है, लेकिन फिलहाल 200 प्वाइंट ही बच जाए, यही बहुत है।'

उनकी बात का जवाब देते हुए महेंद्र यादव ने कहा था, 'पहले से कमतर मांग करेंगे तो क्या मिलेगा! जब आन्दोलन ही कर रहे हैं तो सही मांग उठाना चाहिए।' अरविन्द कुमार और धर्मवीर यादव की तरह थोड़ा-सा अलग कमेन्ट वरिष्ठ पत्रकार upendra Prasad का था।' रोस्टर सिस्टम खत्म हो। सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी के लिए इंडियन एजुकेशन सिस्टम बने और इस सर्विस के लिए upsc सेलेक्शन करे, स्टेट लेवल पर यही काम स्टेट पीसीएस करे', कहना था उपेन्द्र प्रसाद का। उनका जवाब देते हुए महेंद्र यादव ने लिखा था— 'यही तो! हमें क्या चाहिए, ये

स्पष्ट तो होना चाहिए। आन्दोलन का मकसद क्या है। 200 प्वाइंट रोस्टर तो लग ही नहीं पाया।' बहरहाल अरविन्द कुमार, धर्मवीर यादव और उपेन्द्र प्रसाद को छोड़कर बाकी लोगों ने खुलकर महेंद्र यादव के विचार का समर्थन किया था। एडवोकेट lalbabu lalit ने कहा था–that is what I wanted to say. 200 point roster system is faulty'. Gantes kumar ने महेंद्र यादव के विचार का उत्साहपूर्वक समर्थन करते हुए लिखा था-'सही कहा भाई साहब आपने।' Bhawesh chaudhry का कहना था-'हाँ जी अब इसके लिए आन्दोलन करना चाहिए।' Prabuddh bhartiy ने नए विचार का समर्थन करते हुए कहा था, 'ये बढ़िया कहा ..200 होकर भी 40 यूनिवर्सिटियों में ओबीसी 0 है और एसटी 0.7 इसका भी फायदा नहीं ..13 ही रखों लेकिन रिवर्स क्रम में।' Anil Raj ने रिवर्स क्रम का समर्थन करते हुए कमेन्ट किया था, 'बिल्कुल सही बात रिवर्स में 13 प्वाइंट रोस्टर ही चलना चाहिए। पहले एसटी फिर एससी फिर ओबीसी और बाद मे जनरल। तब जाके कुछ संतुलन बन पायेगा।' amit k.yadav saifai ने बड़े जोश के साथ लिखा था-'यही बात सदन में सपा से सांसद धर्मेन्द्र भैया ने कही है कि हम 13 प्वाइंट रोस्टर के समर्थन में हैं। बस उसे उलट दीजिये। पहला, एससी, दूसरा एसटी, तीसरा ओबीसी और चौथा...' इसी तरह से बाकी लोगों ने भी महेंद्र यादव के विचार का समर्थन किया था। शायद रिवर्स रोस्टर के विचार का बढ़ता असर ही कहा जायेगा कि मशहूर पत्रकार Dilp mandal के इस पोस्ट–'50% आरक्षण है। हर दूसरा पोस्ट एसटी-एससी-ओबीसी को मिलनी चाहिए। अगर सरकारें बेईमान और कमीनी न होतीं, तो ये होता रोस्टर सिस्टम। लेकिन सरकार बेईमान व कमीनी है। और दलित-पिछड़ों-आदिवासियों की बात करने वाला नेता...क्यों जुबान खराब करूं'–पर prabuddh bhartiy को यह लिखने में कोई कुंठा नहीं हुई–'200 वाला कोण से काम का था?

रिवर्स रोस्टर प्रणाली के चैम्पियन पैरोकार : सांसद धर्मेन्द्र यादव

बहरहाल रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर प्रणाली की पहलकदमी भले ही पत्रकार महेंद्र यादव ने की हो, किन्तु इसे जनप्रिय बनाने में अग्रणी भूमिका सांसद धर्मेन्द्र यादव की ही है, इसका साक्ष्य इस लेखक को 11 जनवरी की शाम को मिल गए। 11 जनवरी, 2019 को वंचित वर्गों के छात्र और गुरुजनों ने दिल्ली के आईटीओ स्थित यूजीसी के ऑफिस से मानव संसाधन विकास मंत्रालय तक की जो 'न्याय यात्रा' निकाली, उसमें यह लेखक भी शामिल था। इस मार्च के जनपथ पहुंचने के बाद जब पुलिस

ने जुलुस में शामिल लोगों को मारपीट कर पार्लियामेंट थाने में बंद कर दिया, तब सांसद सावित्री बाई फुले के कुछ अन्तराल बाद आन्दोलनकारियों का हौसला बढ़ाने धर्मेन्द्र यादव भी वहां आये। यहाँ पहुंचकर उन्होंने अपने संबोधन में सरकार की मंशा और विपक्ष की रणनीति पर विस्तार से रोशनी डाली, जिसपर लोगों ने बार-बार तालियां बजायी। लेकिन सबसे ज्यादा ताली उन्हें उस बात पर मिली जब उन्होंने यह कहा—'13 प्वाइंट रोस्टर के समर्थन में हैं। बस उसे उलट दीजिये। पहला, एससी, दूसरा एसटी, तीसरा ओबीसी और चौथा जनरल को दे दीजिये।' उनके इस कथन पर जब उनके निकट जाकर मैंने बधाई दी थी, उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कर यह बात कही, 'कई बार कहा हूँ और आगे भी कहता रहूँगा।' धर्मेन्द्र यादव की इस सोच से शायद औरों की तरह पत्रकार दिलीप मंडल भी रोमांचित हैं, इसलिए उन्होंने सोत्साह 11 जनवरी की देर रात फेसबुक यह पोस्ट डाला जिस पर कुछेक घंटों मध्य ही सैकड़ों लोगों ने अपने पसंद की मोहर लगा दी। उनका वह पोस्ट था, 'रोस्टर लागू करने का लोहियावादी फॉर्मूला—धर्मेंद्र यादव, सांसद। जहां एक ही सीट है, वह आदिवासी को दो, दूसरी सीट एससी को। तीसरी ओबीसी को। इसके बाद चौथी, पांचवीं और छठी अनरिजर्व करो। ऐसे ही 200 प्वाइंट तक ले जाओ, जिसमें 30 एससी, 15 एसटी और 54 ओबीसी को दो। बाकी अनरिजर्व रखो खुले मुकाबले के लिए, अगर रोस्टर इस नियम से लागू हुआ तो जज लोग खुद ही कहेंगे कि नौकरी यूनिवर्सिटी और कॉलेज के हिसाब से दो नहीं तो बेचारे सवर्णों को नौकरी कैसे मिलेगी।'

वास्तव में किसी भी विचार को जन्म देने में बुद्धिजीवियों का योगदान भले ही खास हो, किन्तु उसे जनप्रिय बनाने में नेता ही सक्षम होते है। यही रिवर्स रोस्टर के साथ हो रहा है। तेजस्वी यादव के बाद वर्तमान बहुजन नेताओं में धर्मेन्द्र यादव दूसरे ऐसे नेता के रूप में उभरे हैं, जो सवर्ण आरक्षण के बाद विभागवार आरक्षण से उपजे निराशाजनक हालात में हर समय वंचितों के बीच पहुंचकर मनोबल बढ़ा रहे हैं। और सोशल मीडिया के सौजन्य से विद्युत् गति से उनका सन्देश लोगों तक जा रहा है, जिस कारण रिवर्स रोस्टर का विचार भी फैल रहा। यही कारण है, 12 जनवरी की दोपहर जब मैं यह लेख लिख रहा हूँ, फेसबुक पर इससे जुड़े दो और पोस्ट बरबस दृष्टि आकर्षित कर रहे हैं। सावित्री बाई फुले महासभा की राष्ट्रीय अध्यक्ष Nirdesh Singh ने आज 12 जनवरी की सुबह 10 बजे यह पोस्ट डाला 'सरकारें चाहती हैं कि गरीब और वंचितों को उसका हक मिले तो ठीक है 13 प्वाइंट रोस्टर लागू कर दो, लेकिन इसको उल्टा करो। पहले st को दो, दूसरा

sc को दो, उसके बाद obc को, फिर जनरल को। हम इसका समर्थन करेंगे तब न्यायपूर्ण बंटवारा होगा और गरीब को उसका हक मिलेगा। देश में सबसे ज्यादा सताया और हक वंचित समाज st है। सबसे पहले उसको दो जिससे वह देश की मुख्यधारा में जुड़ सके और देश तरक्की की राह पर अग्रसर हो।' लेकिन इस मामले में अबतक का सबसे जोरदार पोस्ट Kapilesh Prasad की ओर से आया है। उन्होंने आज 12 जनवरी की दोपहर में लिखा है।

SC/ST/OBC वर्ग के संवैधानिक आरक्षण के प्रावधानों को लेकर देश भर के अनुसूचित जाति/जनजाति और पिछड़े वर्ग के लोग आक्रोश और आन्दोलित हैं। संघ भाजपा की संविधान और आरक्षण विरोधी नीतियों के खिलाफ संसद से लेकर सड़कों तक गतिरोध और बगावत के स्वर फूट रहे हैं। 5 मार्च को 13 प्वाइंट रोस्टर रिजर्वेशन प्रणाली आने के बाद से ही देश का सामाजिक और राजनीतिक तापमान उत्तरोत्तर भीषण वृद्धि को अग्रसर है। आरक्षण व्यवस्था और इसकी पूरी प्रणाली को खत्म करने और इसकी हत्या करने की साजिश के खिलाफ सबसे पहले यूनिवर्सिटी स्तरीय शिक्षकों, छात्रों, शोधार्थियों सहित सामाजिक कार्यकर्ताओं ने पहल की। रोस्टर को लेकर इनका आन्दोलन धारदार बना और देशव्यापी जन समर्थन के साथ-साथ देश कुछ राजनीतिक दलों के नेताओं ने इसको अपने नैतिक रूप से भौतिक धरातल पर पुरजोर समर्थन दिया और आज भी ये निरन्तर इस मनुवादी षडयंत्र के खिलाफ आन्दोलित हैं। 200 प्वाइंट रोस्टर पर संसद में बिल नहीं लाए जाने तक तथा यूनिवर्सिटीज में अगली किसी भी प्रकार नियुक्तियों पर देश की सड़कों और संसद में यह गतिरोध बना रहेगा। संवैधानिक आरक्षण को लेकर इस देशव्यापी आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे 13 प्वाइंट रोस्टर सिस्टम में देश में शक्ति के तमाम स्रोतों और संसाधनों में बहुजनों की भागीदारी का मुद्दा गरमाया रहेगा।

इसमें कोई शक-संदेह नहीं कि SC/ST/OBC की इस राष्ट्रीय अस्मिता की लड़ाई का अगुआ दस्ता शिक्षकों, छात्रों, शोधार्थियों और सामाजिक/राजनीति कार्यकर्ताओं की टीम ने राजनीतिक महकमे के शीर्ष राजनेताओं, सांसदों, विधायकों एव अन्य जन प्रतिनिधियों को विरोध की कतार में ला खड़ा किया है। बहरहाल सरकार इस ज्वलंत मुद्दे को लेकर फंसी जरूर है पर वह अपनी सुनियोजित साजिशों से बाज नहीं आने वाली! सो बेहतर हो विरोध का यह स्वर और आन्दोलन और मुखर हो, धारदार हो और देश की 85% बहुसंख्यकों की प्रतिभागिता इसमें बनी रहे।

किन्तु देश की प्रबुद्ध ताकतों, सामाजिक न्याय की नेतृत्वकारी शक्तियों और वंचित जमात के सच्चे, समर्पित सिपहसालारों व रहनुमाओं को 200 प्वाइंट रोस्टर

को पुनः यथावत बहाल करने सम्बन्धी बिल की हठधर्मिता से आगे निकल कर संघ-भाजपा और मोदी सरकार को उनके ही जाल में क्यों न फांसा जाए? इससे देश की समस्त सेवाओं, शक्ति के तमाम स्रोतों, न्यायपालिका आदि में बहुजनों की भागीदारी 'जनसंख्यानुपातिक भागीदारी' की लड़ाई को संबल और आधार मिले? कहने का आशय यह कि आरक्षण के असल हकदार और देश के वंचितों के साथ संवैधानिक न्याय हो, सो 13 प्वाइंट भी मंजूर है बशर्ते 13 प्वाइंट रोस्टर रिजर्वेशन सिस्टम के वर्तमान क्रमानुसार नियुक्तियों के प्रावधानों को सरकार ठीक उल्टे क्रम में संवैधानिक रूप से लागू करने की तत्काल घोषणा करे। रोस्टर क्रम आरक्षित/अनारक्षित वर्ग। 1-st, 2- sc, 3- obc, 4- General @kapileshprasad 12/02/2019.

संसाधनों पर पहला हक किसका?

बहरहाल वंचित समाजों के बुद्धिजीवियों और नेतृत्व वर्ग के मध्य बड़ी तेजी से उभरता रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर का विचार, बारह साल पुराने एक सवाल को बदले हालात में नए सिरे से और बड़े आकार में राष्ट्र के समक्ष खड़ा कर दिया है। स्मरण रहे पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कभी यह कहकर राष्ट्र को चौका दिया था कि संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है। वह बयान उन्होंने मुस्लिम समुदाय की बदहाली को उजागर करने वाली सच्चर रिपोर्ट के 30 नवम्बर, 2006 को संसद के पटल पर रखे जाने के कुछ ही दिन बाद 10 दिसंबर, 2006 को राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) की बैठक में दिया था। एनडीसी की उस बैठक में उन्होंने अपने संबोधन में कहा था कि देश के संसाधनों पर पहला हक पिछड़े व अल्पसंख्यक वर्गों और विशेषकर मुसलमानों का है। डॉ. सिंह के उस बयान का कांग्रेस ने भी समर्थन किया था। उनका वह बयान उस वक्त आया था, जब कुछ राज्यों में विधानसभा चुनाव प्रस्तावित थे। लिहाजा उनके उस बयान ने काफी तूल पकड़ लिया। भाजपा ने पूर्व प्रधानमंत्री के इस बयान पर कड़ी आपत्ति जताई थी। उसके बाद एनडीसी का मंच राजनीति का अखाड़ा बन गया था और उसी मंच से भाजपा शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने प्रधानमंत्री के बयान का कड़ा विरोध जताया था। विरोध इतना बढ़ गया था कि बाद में प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रवक्ता संजय बारू को मनमोहन सिंह के बयान पर सफाई देनी पड़ गयी थी। उन्हें कहना पड़ा था कि प्रधानमंत्री अल्पसंख्यकों की बात कर रहे थे, केवल मुसलमानों की नहीं। तब गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी, मध्य प्रदेश के सीएम शिवराज सिंह चौहान और छत्तीसगढ़

के सीएम रमन सिंह ने मनमोहन सिंह के बयान को देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा बताया था।

नरेन्द्र मोदी, शिवराज सिंह चौहान और रमण सिंह की कड़ी आपत्ति के कुछ अंतराल बाद भाजपा के वरिष्ठ नेता और लोकसभा के नेता प्रतिपक्ष लाल कृष्ण आडवाणी ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के बयान पर निशाना साधते हुए कहा था कि 'केंद्र सरकार अपने स्वार्थों के लिए सरकारी खजाने पर अल्पसंख्यकों का हक बताकर अलगाववाद और अल्पसंख्यकवाद को हवा दे रही है।' लोग सोच सकते हैं बात आई गयी हो गयी होगी। किन्तु नहीं! 2006 में पूर्व प्रधानमंत्री द्वारा कही गयी उस बात को भाजपा के लोग आज भी नहीं भूले हैंः वे मौका माहौल देखकर समय-समय पर कांग्रेस और डॉ. सिंह को निशाने पर लेते रहे हैं। इसी क्रम में अभी 30 जनवरी 2019 को भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने भाजपा अल्पसंख्यक मोर्चे के राष्ट्रीय सम्मलेन में कह दिया, 'जो लोग दावा करते थे कि संसाधनों पर पहला हक अल्पसंख्यकों का है, उन्होंने उनके हक के लिए कुछ नहीं किया। जबकि हमारा मानना है देश के संसाधनों पर पहला हक गरीबों का है।' अमित शाह के दो दिन बाद 1 फरवरी, 2019 को बजट पेश करते हुए केन्द्रीय मंत्री पीयूष गोयल ने फिर एक बार मनमोहन सिंह पर अप्रत्यक्ष रूप से निशाना साधते एवं भाजपा के रुख से अवगत कराते हुए कह दिया, 'संसाधनों पर पहला हक गरीबों का है।' यही नहीं पुराने दलित भाजपाई रामनाथ कोविंद राष्ट्रपति बनने के बाद भी मनमोहन सिंह की बात नहीं भूले, लिहाजा 70वें गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम राष्ट्रपति के पारम्परिक संबोधन में उन्होंने 25 जनवरी, 2019 की शाम कह दिया, 'देश के संसाधनों पर हम सभी का बराबर का अधिकार है। चाहे हम किसी भी समूह, समुदाय या क्षेत्र के हों। समग्रता की भावना को अपनाये बगैर भारत के विकास की अवधारणा साकार नहीं हो सकती। भारत की बहुलता हमारी सबसे बड़ी शक्ति है। भारतीय मॉडल विविधता, लोकतंत्र और विकास के तीन स्तंभों पर टिका है।'

अवसरों और संसाधनों पर पहला हक : सवर्णों या एसटी-एससी-ओबीसी का!

बहरहाल अब रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर के जरिये एसटी, एससी, ओबीसी के बाद सामान्य वर्ग को आरक्षण देने का जो सवाल बहुजन नेतृत्व और बुद्धिजीवियों की ओर से खड़ा किया जा रहा है, वह यक्ष प्रश्न बनकर अब राष्ट्र के समक्ष खड़ा होने जा रहा है। स्मरण रहे ढेरों जानकार लोगों के मुताबिक जो 13 प्वाइंट रोस्टर

उच्च शिक्षा में नियुक्तियों का आधार बनने जा रहा है, वह कल उच्च शिक्षा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी लागू हो सकता है। अतः इसका असर कॉलेज/विश्वविद्यालयों से आगे भी होने जा रहा है। बहरहाल यह बात ढकी-छिपी नहीं रह गयी है कि इसका पूरा ताना-बाना उन बहुजनों को ''नॉलेज-सेक्टर से आउट'' करने के मकसद से तैयार किया गया है, जिनका राज-सत्ता और अर्थ-सत्ता के साथ ज्ञान-सत्ता में अभी ठीक से प्रवेश भी नहीं हो पाया है। दूसरी ओर इसके जरिये ऐसे तबकों का ज्ञान-सत्ता में अप्रतिरोध्य एकाधिकार स्थापित करने का सफल उपक्रम चलाया गया है, जिनके शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक और शैक्षिक) पर वर्चस्व की दुनिया में कोई मिसाल ही नहीं है। इन्हीं सवर्णों को संविधान की धज्जियां उड़ाते हुए सरकारी नौकरियों और उच्च शिक्षा में आरक्षण सुलभ कराने के एक पखवाड़े के मध्य 13 प्वाइंट रोस्टर के जरिये शिक्षा के क्षेत्र में उनके एकाधिकार को पुष्ट कराने की व्यवस्था करा दी गयी है। बहरहाल 13 प्वाइंट रोस्टर के लाभकारी वर्ग की स्थिति का एक बार ठीक से जायजा लेने पर किसी का भी सर चकरा जायेगा।

आजादी के 70 साल बाद : सवर्ण ही देश के मालिक

केंद्रीय कार्मिक मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 1 जनवरी 2016 को जारी आंकड़े बताते हैं कि केंद्र सरकार में ग्रुप 'ए' की कुल नौकिरयों की संख्या 84 हजार 521 है। इसमें 57 हजार 202 पर सामान्य वर्गो (सवर्णों) का कब्जा है। यह कुल नौकरियों का 67.66 प्रतिशत होता है। इसका अर्थ है कि 15-16 प्रतिशत सवर्णों ने करीब 68 प्रतिशत ग्रुप ए के पदों पर कब्जा कर रखा है और देश की बहुसंख्य आबादी 85 प्रतिशत ओबीसी, दलित और आदिवासियों के हिस्से सिर्फ 32 प्रतिशत पद हैं। अब गुप 'बी' के पदों को लेते हैं। इस ग्रुप में 2 लाख 90 हजार 598 पद हैं। इसमें से 1 लाख 80 हजार 130 पदों पर अनारक्षित वर्गों का कब्जा है। यह ग्रुप बी की कुल नौकरियों का 61.98 प्रतिशत है। इसका मतलब है कि ग्रुप बी के पदों पर भी सर्वण जातियों का ही कब्जा है। यहां भी 85 प्रतिशत आरक्षित संवर्ग के लोगों को सिर्फ 28 प्रतिशत की ही हिस्सेदारी है। कुछ ज्यादा बेहतर स्थिति ग्रुप 'सी' में भी नहीं है। ग्रुप सी के 28 लाख 33 हजार 696 पदों में से 14 लाख 55 हजार 389 पदों पर अनारक्षित वर्गो (अधिकांश सवर्ण) का ही कब्जा है। यानी 51.36 प्रतिशत पदों पर सवर्ण ही काबिज है। हां, सफाई कर्मचारियों का एक ऐसा संवर्ग है, जिसमें एससी, एसटी और ओबीसी 50 प्रतिशत से अधिक

है। जहां तक उच्च शिक्षा में नौकरियों का प्रश्न है आरटीआई के सूत्रों से पता चला है कि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर, एसोसिएट और असिस्टेंट प्रोफेसर के पदों पर सवर्णों की उपस्थिति क्रमशः 95.2, 92.90 और 76.12 प्रतिशत है। डॉ.आंबेडकर के हिसाब से शक्ति के स्रोत के रूप में जो धर्म आर्थिक शक्ति के समतुल्य है, उस पर आज भी 100 प्रतिशत आरक्षण इसी वर्ग के लीडर समुदाय का है। धार्मिक आरक्षण सहित सरकारी नौकरियों के ये आंकड़े चीख-चीख कह रहे हैं कि आजादी के 70 सालों बाद भी हजारों साल पूर्व की भांति सवर्ण ही इस देश के मालिक हैं।

सरकारी नौकरियों से आगे बढ़कर यदि कोई गौर से देखे तो पता चलेगा कि पूरे देश में जो असंख्य गगनचुम्बी भवन खड़े हैं, उनमें 80-90 प्रतिशत फ्लैट्स इन्हीं सवर्णों के हैं। मेट्रोपोलिटन शहरों से लेकर छोटे-छोटे कस्बों तक में छोटी-छोटी दुकानों से लेकर बड़े-बड़े शॉपिंग मॉलों में 80-90 प्रतिशत दूकानें इन्हीं की है। चारसे आठ-आठ लेन की सड़कों पर चमचमाती गाड़ियों का जो सैलाब नजर आता है, उनमें 90 प्रतिशत से ज्यादा गाड़ियां इन्हीं की होती हैं। देश के जनमत निर्माण में लगे छोटे-बड़े अखबारों से लेकर तमाम चैनल्स प्रायः इन्हीं के हैं। फिल्म और मनोरंजन तथा ज्ञान-उद्योग पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा इन्हीं का है। संसद विधान सभाओं में वंचित वर्गों के जनप्रतिनिधियों की संख्या भले ही ठीक-ठाक हो, किन्तु मंत्रिमंडलों में दबदबा इन्हीं का है। मंत्रिमंडलों में लिए गए फैसलों को अमलीजामा पहनाने वाले 80-90 प्रतिशत अधिकारी इन्हीं वर्गों से हैं। न्यायिक सेवा, शासन-प्रशासन, उद्योग-व्यापार, फिल्म-मीडिया, धर्म और ज्ञान क्षेत्र में भारत के सवर्णों जैसा दबदबा आज की तारीख में दुनिया में कहीं भी किसी समुदाय विशेष का नहीं है। अतः भारत के जिस तबके की प्रगति में न तो अतीत में कोई अवरोध खड़ा किया गया और न आज किया जा रहा है; जिनका आज भी शक्ति के समस्त स्रोतों पर औसतन 80-90 प्रतिशत कब्जा है, वैसे शक्तिसंपन्न सवर्णों को 13 पाइंट रोस्टर के जरिये कॉलेज/विश्वविद्यालय की नौकरियों या अन्य किसी भी क्षेत्र में पहले अवसर सुलभ कराने का कोई औचित्य है! नहीं है! नहीं है! नहीं है!!

दुनिया की हर अदालत 13 प्वाइंट रोस्टर उलटने का समर्थन करेगी

ऐसे में दुनिया की कोई भी अदालत, कोई भी लोकतान्त्रिक व विवेकसंपन्न समाज रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर का समर्थन करेगा ही करेगा। कम से कम बहुजन समाज तो करने लगा है। काबिले गौर है कि रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर के समर्थन में आ

रहे पोस्टों की देखादेखी कल अर्थात 12 जनवरी की शाम मैंने एक छोटा सा यह पोस्ट डाला-'अवसरों और संसाधनों पर पहला हक वंचित (एसटी-एससी- ओबीसी) वर्गों का। इससे आप कितना सहमत हैं?'मेरे इस छोटे से पोस्ट पर आज 13 जनवरी की सुबह 10.40 तक 55 कमेन्ट आये हैं, और 90 प्रतिशत से ज्यादा लोगों ने 100 प्रतिशत समर्थन जताया है, जो बताता है यदि बहुजन नेतृत्व और बुद्धिजीवी वर्ग अवसरों और संसाधनों के बंटवारे में पहला हक किनका हो, के मुद्दे पर दुनिया की विशाल वंचित आबादी के मध्य जाएं तो उसके चमत्कारिक परिणाम सामने आ सकते हैं। हाँ जैसे मनमोहन सिंह के बयान को सुविधाभोगी सवर्ण वर्ग के नेता और बुद्धिजीवियों ने अलगाववाद को बढ़ावा देने वाला करार दिया था वैसे ही वे वंचित जातियों के हक की हिमायत को जातिवाद को बढ़ावा देने वाला कह सकते हैं। लेकिन उनके ऐसे आरोपों की परवाह न करते हुए बहुजनों को तमाम क्षेत्रों में ही एसटी, एससी और ओबीसी को प्राथमिकता दिए जाने की लड़ाई में उतरना चाहिए। बिना इसके न तो बहुजनों को उनका वाजिफ हक मिलेगा और न ही सामाजिक और आर्थिक गैर-बराबरी का खात्मा ही होगा, जिसका सपना हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने देखा था।

–निष्पक्ष दिव्यसंदेश, 14 फरवरी, 2019

13 प्वाइंट रोस्टर उलटना क्यों जरूरी है!

—एच.एल. दुसाध

मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या : आर्थिक और सामाजिक विषमता!

मानव जाति, सभ्यता के शुरुआती दौर से लेकर आज तक असंख्य समस्याओं के सम्मुखीन रही है। किन्तु जिन्होंने समस्याओं की गहराई में उतरने का गंभीर प्रयास किया, उनका कहना है कि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या है, जिसकी उत्पत्ति शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनैतिक-शैक्षिक-धार्मिक) का विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है। इसी समस्या की कोख से ही सारी दुनिया में भूख, कुपोषण, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, विच्छिन्नता और आतंकवाद इत्यादि की सृष्टि होती रही है। चूंकि इस समस्या की सृष्टि का मूल कारण विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य शक्ति के स्रोतों का असमान बंटवारा रहा है, अतः आर्थिक और सामाजिक विषमता को सबसे बड़ी समस्या मानते हुए हजारों साल से गौतम बुद्ध, मज्दक,अफलातून इत्यादि से लेकर रूसो, वाल्टेयर, चार्ल्स हाल, मार्क्स, लेनिन, माओं, हो ची मिन्ह, नेल्सन मंडेला, भगत सिंह, आंबेडकर, लोहिया, रामस्वरूप वर्मा, जगदेव प्रसाद, कांशीराम इत्यादि दुनिया के तमाम महामानव लोगों के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों का वाजिब बंटवारा करवाने के लिए अपने-अपने स्तर पर ताउम्र प्रयासरत रहे और आने वाले दिनों में दूसरे लोग भी करते रहेंगे। इस क्रम में जहाँ दुनिया में भूरि-भूरि साहित्य सृजित हुआ, वहीं असंख्य लोगों ने प्राण बलिदान तक किया।

आर्थिक और सामाजिक विषमता पर बाबा साहेब की चेतावनी!

बहरहाल आर्थिक और सामाजिक विषमता के कुपरिणामों से अवगत होने के कारण ही बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर संविधान सौपने के पूर्व 25 नवम्बर, 1949 को यह

चेतावनी देना नहीं भूले कि 26 जनवरी, 1950 से हमलोग एक विपरीत जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति के क्षेत्र में हमलोग समानता का भोग करेंगे, किन्तु सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में मिलेगी असमानता। हमें निकट भविष्य में आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के उस ढांचे को विस्फोटित कर सकती है, जिसे संविधान निर्मात्री सभा ने इतनी मेहनत से बनाया है। किन्तु आजाद भारत के शासकों ने उनकी बात की बुरी तरह अनदेखी कर दिया, जिस कारण देश के सैकड़ों जिले नक्सलवाद की चपेट में आ गए। चूँकि आर्थिक और सामाजिक विषमता की उत्पत्ति शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनैतिक-धार्मिक-शैक्षिक) के विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है, इसलिए भारत में विषमता के खात्मे के लिए सवर्ण, ओबीसी, एससी-एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों के मध्य शक्ति के स्रोतों का वाजिब बंटवारा कराना पड़ता। पर, चूँकि आजाद भारत में सत्ता पर जिन पंडित नेहरु, इंदिरा गाँधी , राजीव गांधी, नरसिंह राव, जय प्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, ज्योति बासु, डॉ. मनमोहन सिंह इत्यादि दबदबा रहा, वे सवर्ण समुदाय से रहे, इसलिए स्व-वर्गीय हित में उनमें आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे की कभी आंतरिक चाह ही पैदा न हो सकी। इसलिए इन्होंने गरीबी हटाओं, लोकतंत्र बचाओ, राम मंदिर बनाओ इत्यादि जैसे लोकलुभावन नारों के साथ जो सत्ता दखल किया, उसका उपयोग वे तिल-तिल कर लोकतंत्र को विस्फोटित करने का सामान मुहैया कराने से भिन्न और कुछ न कर सके।

विकास से वंचित : दलित-आदिवासी

बहरहाल जब आजाद भारत की राजनीति के सुपर स्टारों द्वारा विषमता की अनदेखी करने से देश के अनेक जिले नक्सलवाद की चपेट में आ गए है, ऐसी ही स्थिति में 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी। मंडल रिपोर्ट ने सवर्णों को नौकरियों के क्षेत्र में 27 प्रतिशत अवसरों से वंचित करने के साथ उन्हें राजनीतिक रूप से लाचार समूह में तब्दील करने में बड़ा योगदान किया। इससे कुपित होकर दलित, आदिवासी, पिछड़ों की उन्नति और प्रगति में प्रभावी भूमिका अदा करने वाले आरक्षण के खात्मे तथा सवर्णों के सशक्तिकरण के लिए नरसिंह राव ने 24 जुलाई, 1991 को नव उदारवादी अर्थनीति ग्रहण कर लिया। इसके चलते भारत में आर्थिक और सामाजिक विषमता अभूतपूर्व रूप से विस्तारलाभ की। वह इसलिए कि इससे विकास तो हुआ, किन्तु उस विकास के असमान बंटवारे ने भारत में

मानव जाति की समस्या को तुंग पर पहुंचा दिया। भूमंडलीकरण के दौर में विकास के असमान बंटवारे पर सबसे गहरी चिंता खुद नवउदारवादी अर्थिनीति के रूपकार डॉ. मनमोहन ने व्यक्त की। उन्होंने अपने कार्यकाल में एकाधिक बार कहा कि भारत में विकास तो हुआ है, पर, उसका लाभ दलित, आदिवासी,अल्पसंख्यकों को इत्यादि को नहीं मिला। विकास के बंटवारे का सुफल इन वंचित तबकों को मिले, इसके लिए उन्होंने देश के अर्थशास्त्रियों के समक्ष बार-बार रचनात्मक सोच की अपील भी की थी। वहीं अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन जब 30 नवम्बर, 2006 को सदन के पटल पर रखी गयी सच्चर रिपोर्ट देखे तो उसमें अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों की बदहाली की तस्वीर देखकर इतने विचलित हुए कि 10 दिसंबर, 2006 को ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना और विकास पर चर्चा करते हुए कह दिया था, 'देश के संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है।' उनके उस बयान पर सबसे ज्यादा बवाल आज केंद्र की सत्ता पर काबिज राष्ट्रवादियों ने मचाया था। तब आडवाणी से लगाये मोदी तक ने कहा था संसाधनों पर पहला हक गरीबों का। विगत कुछ दिनों में फिर अमित शाह, पीयूष गोयल और खुद राष्ट्रपति कोविंद ने पुरानी बात दोहराते हुए हुए कहा है, 'संसाधनों पर पहला हक गरीबों का है'। इसका मतलब यह हुआ कि आज की सत्ता पर काबिज लोग भी मानते हैं कि संपदा-संसाधनों का इतना असमान बंटवारा हो चुका है कि किसी वर्ग विशेष को प्राथमिकता दिए जाने की जरूरत है। बहरहाल जो सवाल उठाकर कभी प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह ने राष्ट्र को सकते में डाल दिया था, मोदी राज के शेष दिनों में उठाये गए कदमों के बाद संपदा-संसाधनों और अवसरों पर पहला हक किसका, यह सवाल एक बार फिर यक्ष प्रश्न बनकर उठ खड़ा हुआ है।

अवसरों के बंटवारे में सवर्णों को प्राथमिकता

पुलवामा घटना के बाद देश की मीडिया और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा देश को राष्ट्रवाद की लहर में डुबोने का जितना भी प्रबल प्रयास क्यों न हुआ हो, लोग यह भूले नहीं है कि मोदी राज में 7- 22 जनवरी, 2019 के मध्य सवर्ण और विभागवार आरक्षण का जो निर्णय लिया गया, वह देश के उन जन्मजात वंचितों के खिलाफ बहुत बड़ा हमला था, जिन्हें गुलाम और अशक्त बनाने के लिए ही नवउदारवादी अर्थनीति ग्रहण की गयी। इनमें सबसे खतरनाक निर्णय विभागवार आरक्षण का रहा जिसके अनुपालन के लिए जो 13 प्वाइंट रोस्टर बनाया गया है, उसमें नियुक्ति में चौथे, सातवें और 14 वें पद पर वंचित वर्गों के क्रमशः पिछड़े, दलित और आदिवासी

वर्ग के लोगों को अवसर मिलेगा। दूसरे शब्दों में 13 प्वाइंट रोस्टर के जरिये अवसरों के बंटवारे में प्राथमिकता उन सवर्णों को दे दी गयी है, जिनका धर्म-सत्ता, राज-सत्ता, अर्थ-सत्ता, प्रचार और न्यायतंत्र पर 80-90 प्रतिशत पहले से ही कब्जा रहा और जिनके संपदा-संसाधनों पर भयावह कब्जे के कारण विषमता की खाई मनमोहन सिंह के भी दौर को पार कर गयी है।

मोदी की सवर्णपरस्त नीतियों का कमाल!

स्मरण रहे नरसिंह राव द्वारा ग्रहण किये गए नवउदारवादी अर्थनीति को सवर्णों के हित में सबसे जोरदार तरीके से किसी ने हथियार के रूप में इस्तेमाल किया तो वह नरेंद्र मोदी ही रहे। मोदी की सवर्णपरस्त नीतियों का कमाल 22 जनवरी, 2018 को प्रकाशित ऑक्सफाम की रिपोर्ट के जरिये सामने आया। उस रिपोर्ट से पता चला कि टॉप की 1% आबादी अर्थात 1 करोड़ 30 लाख लोगों का धन-दौलत पर 73 प्रतिशत कब्जा हो गया है। इसमें मोदी सरकार के विशेष योगदान का पता इसी बात से चलता है कि सन् 2000 में 1% वालों की दौलत 37 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2016 में 58.5 प्रतिशत तक पहुंच गयी। अर्थात 16 सालों में इनकी दौलत में 21 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। किन्तु उनकी 2016 की 58.5 प्रतिशत दौलत सिर्फ एक साल के अन्तराल में 73% हो गयी अर्थात सिर्फ एक साल में लगभग 15% का इजाफा हो गया। शायद ही दुनिया में किसी परम्परागत सुविधाभोगी तबके की दौलत में एक साल में इतना इजाफा हुआ हो। किन्तु मोदी की सवर्णपरस्त नीतियों से भारत में ऐसा चमत्कार हो गया। 1% टॉप वालों से आगे बढ़कर यदि टॉप की 10% आबादी की दौलत का आंकलन किया जाय तो नजर आएगा कि मोदी राज में देश की टॉप 10% आबादी, जिसमें 99.9% सवर्ण होंगे, का देश की धन-दौलत पर 90% से ज्यादा कब्जा हो गया, जिसे विषमता का शिखर कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा। टॉप की 10 प्रतिशत आबादी के विपरीत नीचे की जो 60 प्रतिशत आबादी है, वह महज 4.8 प्रतिशत धन-सम्पदा पर गुजर-बसर करने के लिए अभिशप्त है।

धनार्जन के स्रोतों के पुनर्वितरण की जरूरत

मोदीराज में साल दर साल जो विषमता बढ़ी उसका चित्र विगत वर्षों में क्रेडिट सुइसे, ऑक्सफाम इत्यादि की रिपोटों में बार-बार उभरा और जब-जब भीषण आर्थिक और सामाजिक विषमता का चित्र उभरा, देश के अखबारों ने प्रायः यही लिखा-'गैर-बराबरी

अक्सर समाज में उथल-पुथल का कारण बनती है। सरकार और सियासी पार्टियों को इस समस्या को गंभीरता से लेना चाहिए। संसाधनों और धन का न्यायपूर्ण बंटवारा कैसे हो, यह सवाल अब प्राथमिक महत्त्व का हो गया है।' मोदी राज में भारत में उभरी भीषणतम असमानता से ही चिंतित टॉमस पिकेटी, प्रो. हिमांशु जैसे ढेरों अर्थशास्त्री धनार्जन के स्रोतों के पुनर्वितरण का सिद्धांत देने के लिए सामने आये। इस मामले में लोगों ने प्रो. हिमांशु के विचार को बहुत सराहा, जिन्होंने मोदी राज में उभरी बेहिसाब विषमता के दौर में यह कहने का साहस जुटाया कि आय, संपत्ति तथा उपभोग की विषमता में कमी लाना संभव है। उन्होंने इस विषमता के खात्मे के लिए संपत्ति व आमदनी के पुनर्वितरण के साथ प्रगतिशील टैक्स नीतियां अपनाने का सुझाव दिया।

बहरहाल अवसरों पर सवर्णों का और एकाधिकार पुष्ट करने वाली 13 प्वाइंट रोस्टर नीति के खिलाफ बहुजन छात्र-गुरुजन के साथ जब लेखक—बुद्धिजीवी सड़कों पर उतरे, केंद्र सरकार ने इसे खारिज करने के लिए कोर्ट में पुनः याचिका डालने का आश्वासन दिया : साथ में यह भी आश्वासन दिया कि याचिका खारिज होने पर अध्यादेश लाया जायेगा और जब तक इसका निराकरण नहीं हो जाता, नियुक्तियां नहीं होंगी। किन्तु इस बीच सुप्रीम कोर्ट ने 27 फरवरी को याचिका खारिज कर दी है, जिसके बाद विश्वविद्यालयों में धड़ाधड़ रिक्तियां निकल रही हैं। इनमें देखा जा रहा है कि प्रायः सारे अवसर सवर्णों को जा रहे हैं : इक्का-दुक्का ओबीसी को छोड़कर एससी/एसटी के लिए लिए कोई अवसर ही नहीं रहा गया है। उदाहरण के तौर पर बांदा यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल एंड टेक्नोलाजी में 30 पदों का विज्ञापन निकला है जिनमें 28 पद सामान्य और 2 पद ओबीसी के लिए हैः एससी और एसटी के हिस्से में शून्य पद हैं। इसी तरह 'जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया में प्रोफेसर और एसोसियेट प्रोफेसर के क्रमशः 10 और 20 पदों का विज्ञापन निकला है और यह सारा सिर्फ सामान्य वर्ग को को गया हैः एक भी पद एससी,एसटी और ओबीसी के लिए नहीं है। हाँ इसमें असिस्टेंट प्रोफेसर जो 40 पद निकले हैं, उनमें 30 सामान्य और 10 ओबीसी के लिए हैं : एससी/एसटी यहाँ भी शून्य हैं।

मोदीराज में विस्फोटक बिन्दु पर पहुँची : आर्थिक असमानता!

उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कि जो सरकारी नौकरियां खासकर कर एससी और एसटी वर्गों की उन्नति और प्रगति का आधार रही हैं, उनसे इन वर्गों को बहिष्कृत कर दिया गया है। और यह मानव जाति के इतिहास का सबसे अमानवीय फैसला है

जो केंद्र की चरम सवर्णवादी सरकार की मंशा को ध्यान में रखते हुए भारत की सर्वोच्च अदालत ने दिया है। अमानवीय फैसला इसलिए कि जिन एससी/एसटी वर्गों को 13 प्वाइंट रोस्टर के जरिये अवसरों से शून्य करने का उपक्रम चलाया गया है, वे दुनिया के सबसे गरीब, लाचार व असहाय तबके हैं, जिनमें भूख, कुपोषण, अशिक्षा का कोई ओर-छोर नहीं है। स्कूली शिक्षा में इनके जैसा ड्राप आउट का दर विश्व के अन्य किसी समुदाय में शायद नहीं है। इनमें 54 प्रतिशत दलितों के पास एक गज भी जमीन नहीं है। इनके खिलाफ गाली-गलौज, हत्या-बलात्कार की नियमित रूप से सैंकड़ों घटनाएँ दर्ज होती हैं। ऐसे ही सबसे असहाय आदिवासी समुदाय के करीब 11 लाख परिवारों को सुप्रीम कोर्ट ने उन जंगलों से खदेड़ दिया है, जिनपर इनका जीवन निर्भर था। कुल मिलाकर मोदी सरकार और सर्वोच्च अदालत की ओर से जनवरी-फरवरी, 2019 के मध्य ऐसे-ऐसे कदम उठाये हैं, जिससे पहले आर्थिक और सामाजिक विषमता के मामले में टॉप पर खड़ा भारत और शिखर पर पहुँच गया है। इसके फलस्वरूप उस स्थिति का उद्भव होना तय सा दिख रहा है, जिसमे संविधान निर्माता डॉ. आंबेडकर के शब्दों में विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित करने की दिशा में आगे बढ़ सकती है और विगत वर्षों से लगातार उथल-पुथल मचने की चेतावनी दे रहे अखबारों की भविष्यवाणी भी अब सही हो सकती है। इसका सबसे बड़ा सबब 13 पाइंट रोस्टर ही बनने जा रहा है। अतः जिस रोस्टर के कारण आर्थिक और सामाजिक विषमता एवरेस्ट छूने जा रही है, उससे पार पाने के लिए 13 पाइंट रोस्टर को रिवर्स अर्थात उलटने से बेहतर कोई विकल्प है! क्या बिना ऐसा किये अवसरों और संसाधनों का न्यायपूर्ण बंटवारा मुमकिन है?

-निष्पक्ष दिव्यसन्देश, 3 मार्च,2019

अध्याय-2

व्यावहारिक खण्ड

अवसरों और संसाधनों का पहला हक किनका और क्यों?
–एच. एल. दुसाध

साक्षात्कार

कपिलेश्वर प्रसाद

–बोकारो, झारखण्ड

आजादी के 70 वर्षों बाद आज हम इस काबिल हो पाये हैं कि ''अवसरों और संसाधानों पर पहला हक किसको और क्यों?'' की गुत्थी सुलझाने को आन्दोलित हैं।

यह बेहद अहम सवाल है और इसके उत्तर को रेखांकित करने से पहले प्राचीन/पारम्परिक भारतीय सामाजिक व्यवस्था : इसके रूढ़िवादी क्रम तथा भारत पर विदेशी शासकों, विशेषकर मुगलों से लेकर अंग्रेजों की शासन व्यवस्था और इसके लोकतांत्रिक गणतंत्र बनने तक के सुधार आन्दोलनों, वर्ग संघर्ष व उक्त हित के कानूनी प्रावधानों के संदर्भ में वर्तमान कानूनी व संवैधानिक प्रावधानों का तुलनात्मक अध्ययन जरूरी है।

उक्त प्रश्नोत्तर के संदर्भ में यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय और ज्ञातव्य हो कि भारतीय संविधान कई देशों के लिखित/अलिखित कानूनों का एक परिमार्जित संकलन व दस्तावेज है, किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इससे वंचित/बहिष्कृत भारत के संदर्भ में लाये गये व समाहित विशेष प्रावधान (संविधान प्रदत्त प्रतिनिधित्व, कानून, सम्पत्ति का अधिकार सहित सामाजिक व आर्थिक गैर-बराबरी के अन्य लोकतांत्रिक प्रतिमान) इसके प्राण-तत्व है।

किन्तु अफसोस की बात है कि प्राचीन रुढ़िवादी सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक व्यवस्था व विधानों के लोक प्रचलन के कारण बहिष्कृत भारत यानी बहुसंख्यक आबादी एसटी/ एससी/ ओबीसी के आज साथ भी सामाजिक और आर्थिक न्याय नहीं मिल पाया। यद्यपि इसके लिए हम हमारे जनप्रतिनिधि और सरकार की नीतियाँ पूरी तरह जिम्मेवार हैं। साथ ही इसके पीछे एक बहुत ही महत्वपूर्ण और बड़ा कारण

बहुसंख्यक वर्ग का राजनीतिक बिखराव है।

चूँकि प्राचीन भारत में धर्म आधारित सामाजिक व्यवस्था जो सत्ता-संसाधनों व शक्ति के तमाम स्रोतों व संसाधनों के बंटवारे की व्यवस्था रही, जिस पर अभिजात्य सुविधाभोगी वर्ग का ही कब्जा रहा है। इसमें शूद्रातिशूद्र, अछूत, मलेच्छ वर्ग वर्ण व्यवस्था में तुक्ष्य सेवक और श्रमिक से ज्यादा कुछ नहीं रहा। शोषित बनकर रहना ही इनकी नियति रही। यह वर्ग अमानवीय शोषण, अत्याचार, अन्याय और उत्पीड़न का शिकार हो रहा है, सो इसकी पीढ़ियाँ आज भी मानसिक गुलाम हैं। शिक्षा, धनार्जन, धनसंचय एवं अन्य मानवाधिकारों से ये पूर्णतया वंचित रहे। सो बेगारी की मानसिकता और हीन भावना से ये आज भी ग्रसित हैं। नस्लीय तौर पर इनका यह मनोविज्ञान ही इनके आत्मविश्वास, स्वाभिमान व संबल का संहारक रहा है, और आज भी यह यथावत बरकरार है।

आजादी के बाद के कई दशकों के कालान्तर में आरक्षण सहित अन्य संवैधानिक प्रावधानों के कारण कुछ हद तक इनकी सोच व जीवन शैली में बदलाव हुए, जीवन स्तर में सुधार हुये और इस तरह यह बहुसंख्यक आबादी शिक्षा, ज्ञान और सामाजिक जागरूकता के बल बूते, गांवों, जंगलों और बस्तियों से शहरों की ओर अग्रसर हुई।

'अवसरों व संसाधनों पर पहला हक किनका और क्यों' के संदर्भ में यहाँ विशेष रूप से इस बात का उल्लेख भी जरूरी है कि भू-हदबंदी अधिनियम के बावजूद भी आज देश में कुल कृषि योग्य भूमि का असामान्य वितरण है और यह वर्ग (एससी/एसटी/ ओबीसी) न्यूनतम भू-संपदा के स्वामित्व के हक से आज भी वंचित है। इन वर्गों की कुछ जातियों के लोगों के अपवादों को छोड़ दें तो विकास के हर क्षेत्र में इस बहुसंख्यक आबादी की स्थिति लगभग यथावत है। ये आज भी न्यूनतम व बुनियादी अवसरों व साधनों/संसाधनों से कोसों दूर हैं तथा अभावपूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त हैं। जबकि इनके कल्याणार्थ चलायी जा रही सरकारी योजनाएं यथा बाल-विकास योजना, मध्याह्न भोजन, बीपीएल का लाल कार्ड, राशन कार्ड, प्रधानमंत्री गृह योजना, मनरेगा इत्यादि प्रायोजित लूट के सिवाय कुछ नहीं है। ऐसी तमाम योजनाएं वंचित वर्गों की तरक्की के मार्ग में सबसे बड़ी बाधक और इन्हें दीन-हीन-दरिद्र बनाये रखने के राजनीतिक व सामाजिक षडयंत्र हैं। घोर अभावों से ग्रस्त यह वर्ग इन योजनाओं के दूरगामी परिणामों से बहुत दूर और अनभिज्ञ होता है सो उसे ये क्षणिक लाभ जीवनदायी और राहत प्रतीत होते हैं। इस प्रकार इन योजनाओं के तत्कालिक लाभों से यह वर्ग आकृष्ट और संतुष्ट हो जाता है।

देश की इस बहुसंख्यक आबादी का एक अहम हिस्सा यानी आदिवासियों

की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है। समाज के मुख्यधारा से लगभग कटा हुआ यह वर्ग घोर उपेक्षा भूमिहीनता, शोषण, अत्याचार, कुपोषण, अशिक्षा और गरीबी का शिकार है। सरकार की पूँजीवादीपरस्त नीतियों के कारण ये आये दिन विस्थापन, सरकारी अतिक्रमण और पुलिसिया दमन का दंश झेलने को विवश है। इसकी ताजा मिसाल उच्चतम न्यायालय का क्रूर फ़ैसला और फरमान है जिसके तहत 30 नवम्बर 2018 तक देश भर में 19.39 लाख दावों को खारिज़ करते हुए 20 लाख आदिवासियों को इनकी वन भूमि व जमीन से इन्हें बेदखल करने का माननीय उच्चतम न्यायालय का हालिया आदेश है। इसके लिए सरकार ने पूँजीपतियों के हक में वनाधिकार अधिनियम 2006 का सहारा लिया है, जो इन्हें साधनहीन बनाने का एक बहाना और अधिनियम का दुरुपयोग है।

अब इसी पृष्ठभूमि में आईये आंकड़ों में देखते हैं कि एससी, एसटी और ओबीसी की सामाजिक व आर्थिक स्थिति विश्व परिदृश्य में अत्यन्त भयावह है। 23 मार्च 2018 को लोकसभा में प्रस्तुत ये आंकड़े बताते हैं कि 45.3% आदिवासी और 31.5% दलित आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने को अभिशप्त हैं। एक्शन अगेन्स्ट हंटर संस्था की 2017 के रिपोर्ट के अनुसार भारत में एसटी-28%, एससी-21% तथा ओबीसी की 20% से ज्यादा की आबादी कुपोषण की शिकार है। इसके लिए सीधे तौर जिम्मेवार पर देश के समस्त संसाधनों तथा सेवाओं व शक्ति के अन्य स्रोतों का असमान बंटवारा है।

भारत में इस घोर विषमता और सम्पत्ति के असमान बंटवारा संबंधी ऑक्सफॉम की यह रिपोर्ट हमारे 'अवसरों व संसाधनों का पहला हक किनका और क्यों?' के लिए मजबूत आधार पर पृष्ठभूमि तैयार करती है।

इस अहम सवाल के प्रकाश में हमें इस प्रश्न का उत्तर भी ढूंढ़ना होगा कि आखिर आजादी के 70 वर्षों बाद भी दलित आज दलित क्यों है, और एससी/एसटी और ओबीसी की यह बहुसंख्यक आबादी इतनी वंचित और उपेक्षित क्यों है? इस प्रश्न के जबाब में ही हमारे पहले प्रश्न का हल निहित है।

इस आंकड़े के हिसाब से देश की कुल आबादी का 17%, 8% और 52% क्रमशः एससी/एसटी और ओबीसी हैं। यानी 77%। यह घोर आश्चर्य का विषय है कि देश की यह बहुसंख्यक आबादी जो मेहनतकश है और हाड़तोड़ मेहनत मजदूरी और दिहाड़ी ही इनकी नियति है, आज विकास के हर पायदान पर सबसे निचले स्तर पर क्यों है? व्यापार, स्वरोजगार, सरकारी नौकरियों, कृषि पर इनकी आत्मनिर्भरता व सम्पन्नता के कुछ अपवादों के बावजूद ये देश की व्यापारिक स्पर्धा की दौड़ में

सबसे पीछे हैं और अपनी छोटी पूँजी, साहस जोखिम और बैंकों के कर्ज के बोझ तले दब कर भी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत हैं। आखिर ऐसा क्यों? इसके लिए सिर्फ और सिर्फ हमारी रूढ़िवादी पारम्परिक-सांस्कृतिक जाति-धर्म आधारित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था ही दोषी है।

स्पष्ट है हमारे विकास और संवैधानिक हक अधिकारों के रास्ते में धर्म आधारित यह व्यवस्था तथा इसकी मान्यताएं बाधक हैं, जहां हमारे साथ न्याय और हमारे लोकतांत्रिक हितों की रक्षा करने में कानून व इसकी संवैधानिक संस्थाऐं बौना साबित होती हैं।

अब आइए उक्त विषयक प्रश्नोत्तर के आलोक और संदर्भ में ऑक्सफाम इण्डिया की 'भारत में संसाधनों व सम्पत्तियों के बंटवारे में किसकी कितनी भागीदारी और हिस्सेदारी है', पर 2018 की जारी रिपोर्ट का आवलोकन करते हैं–

गत वर्ष भारत में कुल उत्पादित धन के 73%हिस्से पर 1% सर्वाधिक धनाढ्य लोगों की झोली में चली जाती है। जबकि 67 करोड़ भारतीय जो सर्वाधिक गरीबी की जनसंख्या की आधी है की सम्पत्ति में महज 1%की ही वृद्धि होती है। वहीं भारत में सन् 2000 में 9 अरबपतियों की संख्या बढ़कर सन् 2017 में 101 के आंकड़े तक पहुँच जाती है 15 अरबपति 2017 में जुड़ जाते हैं, और इस तरह भारत का सर्वाधिक धनाढ्य 1% लोग 39% की दर से और भी धनी हो जाते हैं। देश में भारी असमानता और विषमता के ये आँकड़े हमें और भी हैरान करते हैं जब हमें यह पता चलता है कि पिछले 12 महीनों (वर्ष 2017) में इस संभ्रान्त अभिजात्य वर्ग की धन-सम्पत्ति बढ़कर रु. 20913 विलियन की हो जाती है, जो भारत सरकार के वर्ष 2017-08 के कुल बजट के बराबर है। इतना ही नहीं भारत के अरबपतियों ने 37% ने तो अपनी पारिवारिक विरासत अधिग्रहित कर रखी है, जिनका देशभर के अरबपतियों के कुल धन-सम्पत्ति के 51% हिस्से पर कब्जा है।

दुख और हैरत है, जहाँ बात-बात पर विश्व की इस सबसे बड़े लोकतंत्र में भौगोलिक, राजनैतिक, भाषायी, धार्मिक, नस्लीय, जातिय–उपजातिय व बोली की विविधताओं में एकता के दम्भ भरे और दावे किए जाते हों, समान नागरिक संहिता की वकालत की जाती हो, एक समान टैक्स प्रणाली के नाम पर कानूनन फैसले थोपे जाते हों ...वहाँ एकता का यह दम्भ पूरी तरह झूठा व कागजी साबित होता है।

जहाँ देश के संसाधनों सेवा की तथा शक्ति के अन्य स्रोतों के बँटवारे में इतना असमानता, घोर विषमता और अन्याय हो, वहाँ संविधान प्रदत्त 'समानता एवं अवसरों की समानता' के अधिकार की बातें कोरी बकवास, बेमानी और महज

औपचारिक घोषणाओं से ज्यादा कुछ नहीं। विशेषकर यह अन्याय और विषमता इस देश की बहुसंख्यक आबादी के साथ भद्दा मजाक और छलावा है।

सो अवसरों और संसाधनों पर स्वाभाविक संवैधानिक आधार पर पहला हक तो क्रमशः आदिवासियों, अनुसूचित जातियों, अति पिछड़ों व पिछड़ों का बनता है जो देश की संख्यानुपातिक भागीदारी की प्राथमिकताओं के हिसाब से वाजिब, न्यायसंगत और संतुलित है तथा अन्ततः सामान्य वर्गों का हक भी इसी फार्मूले पर निर्धारित हो।

लेखक, कवि, सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ता हैं।
सम्पर्क : 09955520554
07004216178
E-mail Address:kapileshprasad8@gmail.com

डॉ. रमेश प्रेमी

–भोपाल

भारत देश में जब तक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जी के सपनों के भारत की बात नहीं की जाएगी और भारतीय संविधान के अनुसार वर्गवार और जातिवार और धर्मवाद के अनुसार जो व्यवस्था की गई है, उसको लागू नहीं की जाएगी तब तक कुछ हासिल नहीं हो सकता। समय-समय पर उसकी समीक्षा भी होना जरूरी है।

अगर ऐसा नहीं होगा तो हम सब कितना ही लिख लें बोल लें, कितने ही आंदोलन, धरना, मोर्चा और कितनी ही राजनैतिक दल बना लें, कोई भी फायदा उन जातिगत भेदभाव के शिकार लोगों और पिछड़ों को आप न्याय नहीं दे पाएंगे।

उनको कभी भी अम्बानी, टाटा, बिरला, गांधी परिवार, प्रेम जी अजीम नहीं बना पाएंगे क्योंकि इसकी वजह मात्र जातिगत छुआछूत और भेदभाव है। ये ही वो जड़ है जो सामाजिक स्तर पर भारत के बहुसंख्यक लोगों की तरक्की में 1947 से साइलेंट तरीके से बाधक बनी हुई है। क्योंकि 1950 में 26 जनवरी को जब भारत का संविधान लागू हुआ, उस समय भी ब्राह्मण ही देश के सर्वेसर्वा थे और

प्रधानमंत्री से लेकर तकरीबन पूरा का पूरा मंत्रिमंडल भी इन्हीं सवर्ण लोगों से भरा था। आज भी यही हालत है।

फर्क है तो ये कि आज एक बहुरूपिया के रूप में इस जातिगत छुआछूत के शिकार लोग भारत के शीर्ष पदों पर हैं जैसे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री। आज ये उन सभी के गुलाम हैं, उनके इशारों पर ही संविधान में मिले अधिकारों को धीरे-धीरे सवर्णो को देने में लगे हैं।

दुख की बात ये है कि खुद उनके साथ भी ऐसी घटनाएं राष्ट्रपति होते हुए भी हुई, जैसे उनको ही मन्दिरों में पूजा तक नहीं करने दी गई, फिर भी इनको इस भारत के 85% जनता जो भारत की मूलनिवासी है, बहुसंख्यक है, की पीड़ा समझ नहीं आ सकी है।

उन्होंने फिर भी SC/ST एक्ट के अधिकारों को निष्क्रिय करा है

पिछड़ों को भी और पीछे किया हुआ है जिससे उनको आज भी रोजी-रोटी काम-धंधों से भी जातिगत भेदभाव करके निकाल दिया गया है। किसी भी निजी और शासकीय संस्थानों में काम कर रहे SC/ST और OBC के लोगों को हर पल अपमानित किया जा रहा है। महिलाओं और पुरुषों को मानसिक बीमार कर दिया गया है और आर्थिक रूप से इनको पुनः कमजोर करने की साजिस हो रही है।

अब तो 15 सालों से देख रहा हूँ कि शासकीय पदों में एकल पद निकाल रहे हैं। इसमें जो संविधान का आरक्षण का वर्गवार और धर्मवाद तरीके से रोस्टर लागे होना चाहिए उसको खत्म ही कर दिया गया है। शासकीय स्कूलों की फीस और कॉलेज तथा मेडिकल कॉलेजों और आयुष चिकित्सा कॉलेज, होम्योपैथी चिकित्सा कॉलेज की फीस 100 गुना अधिक कर दी गई है जिससे कि छुआछूत और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो को इनमें प्रवेश ना मिलें। क्योंकि जिस शिक्षा की फीस अधिक होगी तो ये बिना कामधंधों वाले जातिगत रूप से सताए बच्चे प्रवेश लेने से वंचित करना चाहते हैं क्योंकि जब ये समाज को पुनः शिक्षा से वंचित करना एक सोची समझी साजिश है। क्योंकि जो लोग पढ़ रहे हैं पढ़ चुके हैं वो अब अपने सामाजिक और कामधंधो में अपने लिए हक मांगने लगे हैं अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के लिए न्याय मांगने लगे हैं।

अब इनको डर सताने लगा है क्योंकि ये प्रतिभाशाली नहीं, बल्कि इनको किसी भी प्रतिस्पर्धा से डर लगता है। ये कायर हैं इनको मात्र बेइमानी करना और झूठ से अपने आप मिया मिठ्ठू बनना आता है और खुद को सर्वज्ञानी समझते

हैं क्योंकि वास्तविक प्रतिभाओं को शिक्षा से ही वंचित कर देते हैं।

ये ही षडयंत्र चल रहा है

10% स्वर्णों के उस तबके को जो आर्थिकरूप से कमजोर हैं उनको आरक्षण की बात है ये वो ही समाज है जो ग्रामीण श्रेत्र में गुंडागर्दी करके SC/ST और OBC के लोगों के साथ आज भी ऊँच-नीच व्यवस्था को चला रहे हैं। वो भूखों रहते हुए भी मर जायेगे पर उन अछूतों को आगे बढ़ते नहीं देख सकते हैं। उनको पढ़ते और नौकरी करते नहीं देख सकते हैं। उनकी महिलाओं को अच्छे वस्त्र और भेषभूषा में नहीं देख सकते हैं। उनकी लड़कियों को पढ़ने नहीं देते; उनको नौकरियां नहीं करने देते है अगर करती हैं तो उनको बदनाम करा दिया जाता है। उनके साथ रेप करा दिया जाता है, जिससे ग्रामीण श्रेत्र की गरीब और आर्थिक रूप छुआछूत के शिकार लोग अभी भी अर्थिकरूप से उनके मानसिक रूप से गुलाम बने हुए हैं।

ग्रामीण के 85% मूलनिवासी लोग आज भी अपने घरों और खेतों पर इज्जत से कामधंधा तक नहीं कर पा रहे हैं। उनकी फसलें भी जला दी जाती हैं। पिछले साल ही की होशंगाबाद मध्य प्रदेश की घटना है उनके पूरी फसलों और घरों को भी जला दिया गया था। उनको आज तक कोई न्याय नहीं मिल सका है। ये तो एक घटना है जो भारत देश के हर कोने में, जहाँ भी SC/ST और OBC के लोग रहते हैं : काम-धंधे और स्कूल कॉलेज और हॉस्पिटल और कारखानों में जाते हैं प्रतिदिन घटनायें होती हैं।

ये आज भी डर और सहम रहे हैं
इनको अब पुनः सुरक्षा की जरूरत है

(मेडिकल स्कॉलर, शासकीय होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल भोपाल, मध्य प्रदेश, मो. 8718054006)

के. नाथ

–कानपुर

इस सवाल का जवाब चाहिए, इसलिए कि 5 मार्च को दलित संगठनों ने भारत बंद का आह्वान किया है और श्री एच एल दुसाध इस पर किताब लिख रहे हैं। भारत की वर्तमान सरकार जिसे मोदी सरकार कहते हैं, वह आरक्षित समूहों के सभी अधिकारों को अघोषित रूप से समाप्त कर रही है। इसीलिए वह सफाई समूहों को अपने पक्ष में करने का षड्यंत्र खेल रहे हैं। भले ही कुंभ में वे सफाई मजदूर न हों, लेकिन देखने में उन्हें इसी वर्ग का कहा गया और प्रयाग में बीस हजार सफाई कर्मचारियों के सामूहिक झाड़ू लगाने का नाटक किया गया और मोदी का सफाई अभिनय पांच वर्षों से चल रहा है। उसका परिणाम यह हुआ कि सफाई करने वाली विभिन्न जातियां भाजपा के मतदाता बन गईं।

भारत के संसाधनों पर उन वर्गों का पहला हक बनता है जो सामाजिक और आर्थिक तौर से पिछड़े हैं। जिनके पास खेत नहीं है : वे खेतिहर मजदूर हैं या बंटाई पर कृषि करके जीविकोपार्जन करते हैं। आदिवासी जनजाति भारत में सबसे कमजोर समूह है जो जंगल पर आधारित है : लकड़ी काटना और शहरों में बेचना तथा फूस के घर बना कर रहना। सरकारें लगातार जंगल और पहाड़ काटते और तोड़ते जा रही हैं। उनकी रहने व खाने की समस्या है पर, सरकारें ध्यान नहीं देती हैं, उन्हें उजाड़ती जा रही हैं। नक्सल आंदोलन, जो दार्जिलिंग के एक गांव से शुरू हुआ तथा जिसका नाम ही नक्सलबाड़ी है, पश्चिम बंगाल में हैं। धान और चाय के बागान में काम करने वाले मजदूरों का खेत या बागान का कम मजदूरी पर सारा दिन काम करना पड़ता। कमर टेढ़ी हो जाती। पैसा कम मिलता, जिससे उनका गुजारा नहीं हो पाता। इनको आरक्षण का लाभ नहीं मिलता क्योंकि वे अशिक्षित हैं। जब आंदोलन खड़ा किया तो उनकी आवाज दबाने की कोशिश की गई और उग्र हुए तो उनके नेताओं का इन्काउटर हुआ; उन पर गोलियां बरसाई गईं। उनका रक्त बहा, लेकिन आंदोलन थमा नहीं।

भारत में एक और खेल हुआ। जो नेपाल से माइग्रेट हो कर 1829 में चाय

बागानों में काम करने के लिए अंग्रेज लाये थे, उनमें शेरपा डुबका तेनजिंग आदि जातियां गोरी चमड़ी की थीं। अंग्रेजों ने इनके रहने की व्यवस्था की। इसाई मिशनरी के स्कूल खोले। पढ़ाया-लिखाया और नौकरियां दी, लेकिन जो काले या मैले आदिवासी थे उनका शोषण किया। कानू सान्याल और मजूमदार जैसे मार्क्सवादी नेताओं ने उन्हें आंदोलित किया। हक के लिए खड़ा किया। उनके पास अभी कोई धर्म नहीं है, रोटी के लिए लड़ रहे हैं। मैंने 'आदिवासी जनजाति आंदोलन का इतिहास' नामक महत्वपूर्ण किताब लिखी है पढ़ा जाना चाहिए।

पहला हक अवसरों और संसाधनों पर आदिवासी समाज का है। भारत की न्यायपालिका जो स्वतंत्र इकाई है वह इनके खिलाफ है यानी मोदी के पक्ष में काम कर रही है।

जब आजादी मिली, उस समय तक कृषि के उत्पादों और कृषि भूमि पर जमींदारों व सवर्ण समूहों का शत प्रतिशत कब्जा था। दलित जातियां खेतिहर मजदूर थीं। कुछ दलित जातियों के पास थोड़ी जमीन थी, जिसमें चमार जातियों के पास कच्चे चमड़े का काम था। मरे पशुओं को उठा कर खाल निकाल कर सुखाना और गांव की बाजार में बेचना तथा चमड़े को रंगना और छप्पर के नीचे बैठ कर जूते बनाना उनका व्यवसाय था। इससे उनकी आर्थिक स्थिति दूसरे दलितों से ठीक थी। कानपुर में कई जमींदार चमार जाति से थे। बड़े चमड़े के ठेकेदार थे। सांवलदास उनमें प्रमुख थे। इसी चमड़े के काम से जमीनें खरीद ली। दूसरी दलित जातियों के पास पैतृक पेशा नहीं था।

ब्रिटिश शासन ने शहरों की सफाई के लिए गांव में रह रही सफाई जातियों को शहरों में सफाई का काम देने को कहा। वे पलायन करके शहरों में बसीं। उनसे मैला ढोने का लिया जाता था। भैंसें ठेले से मैला भर दूसरे स्थानों पर फेंकते थे। कानपुर शहर में ऐसी तमाम थोक की बस्तियां हैं जो अंग्रेजी शासन में बसी थीं।

जब म्यूनिसपल बोर्ड बना, सफाई के लिए इसी जाति समूह को प्राथमिकता के आधार पर भर्ती किया गया। इन्होंने इसे अपना संवैधानिक हक मान लिया। नेता सफाई कर्मचारी संगठन बना सफाई भर्ती के लिए लड़ते रहे : दूसरे हकों के लिए लड़े नहीं।

आरएसएस इस बात को जानता है कि सफाई करने वाली जातियां अन्य मांगों के प्रति खामोश हैं और नरेंद्र मोदी से गंगा नदी के किनारे इनके पैर धुलवा दिये। जब कि भारत के सभी संसाधनों पर बाल्मीकि समाज का हक बनता है

क्योंकि इन्हें अंतिम पायदान का समझा जाता है। पूरी दुनिया में सर्वहारा आंदोलन इसी तर्क को लेकर खड़े हुए कि 'कमाने वाला खायेगा।' यूरोपीय दार्शनिकों ने राजतंत्र, साम्राज्यवाद व बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ आंदोलन खड़ा किये। टामस मोर ने 'यूटोपिया' किताब लिखी। मार्क्स ने 'दास कैपिटल' लिखा। माओत्सेतुंग ने तख्ता पलट आंदोलन चलाया कि पहला हक मेहनतकश का है। लेनिन, स्टालिन और भारत में डॉ. आंबेडकर, राम मनोहर लोहिया आदि महापुरुषों ने मेहनतकशों की आवाज बुलंद की।

लेकिन सवाल बना रहा कि भारत के अवसरों और संसाधनों पर पहला हक किनका और क्यों? इस सवाल का हल इसलिए थम गया क्योंकि लोकतंत्र पर राजा रजवाड़ों का कब्जा हो गया। जिस मकसद से प्रजातंत्र स्थापित किया गया, उसका दुरुपयोग हुआ। आरक्षित वर्गों से जो चुन कर गए वे गुलामी की मानसिकता बदल नहीं पाये और गुलाम बन कर रहे। कभी हकों के सवाल नहीं उठाये। इस कारण संवैधानिक अधिकार दब कर रह गये। पार्टी के एजेंडा पर काम होता रहा। जब आजादी मिली सरकारी पदों पर मुसलमान, कायस्थ और ब्राह्मण बैठे थे। संविधान नहीं पढ़ते थे न कोई भर्ती नियमावली पढ़ते। अपने परिवार के लोगों को अधिकारियों की खुशामद कर के नियुक्ति करा लेते थे।

रोस्टर नहीं बना था आरक्षण था। जब सन् 1966 में कलेक्ट्रेट कानपुर में मेरी नियुक्ति हुई थी हम और दो बाबू कलेक्ट्रेट में थे। सीधी भर्ती होती थी। लालाओं के लड़के लगते थे। सन् 1981 को आरक्षण कोटे की मांग को लेकर मैं अनिश्चित कालीन भूख हड़ताल पर बैठ गया। योगेन्द्र मकवाना गृह राज्य मंत्री भारत सरकार थे। वह मेरे मित्र थे : अखिल भारत अनुसूचित जाति परिषद् संगठन चला रहे थे। इंदिरा गांधी जी संरक्षक थीं। सात दिन तक भूखों रहने के बाद मकवाना जी ने डीएम से बात की। रवि माथुर डीएम मंच पर आये और इम्पलाइमेंट से नाम मंगा कर कोटा पूरा किया।

हकों के लिए लड़ना पड़ेगा।

अभी और.......

आरक्षण

यह बड़ा पेचीदा सवाल था। अनूसूचित जाति जनजाति को नौकरी दें या न दें, यह सवाल हिंदुओं के सामने था। आरक्षित सीटों से जीत कर जा रहे थे, नौकरियों में जाना था। दलित आंदोलन खड़ा नहीं हो पाया था। बाबू जगजीवन राम भारत

के बहुत बड़े मंत्री थे। नेहरु जी ने इस वर्ग की जिम्मेदारी उन्हें दे रखी थी। बाबू जी जिस मंत्रालया में रहे, आरक्षण कोटा पूरा किया। लेकिन भारत के सवर्णों ने दलितों की सामूहिक हत्याएं शुरू कर दी। गांव के गांव काट डाले। खून की नदियां बहा दीं। बिहार उत्तर प्रदेश के गांव खाली हो गये। बूथ कैप्चरिंग करके दलितों का वोट गुंडे डालने लगे। दलित पलायन कर गया।

बिहार के मतदाता मजदूर अन्य प्रांतों में चले गए

वोट यहीं रह गया। रामबिलास पासवान जैसे नेताओं का जन्म हो गया और फिर शुरू हुआ पिछड़ी जातियों के आरक्षण का आंदोलन। मंडल कमीशन ने रिपोर्ट दी और भारत की पिछड़ी, अल्पसंख्यक जातियों को आरक्षण के दायरे में लाया गया। लेकिन उनके लिए कोई नियमावली नहीं थी। रोस्टर बनाया गया जिसे अवसर कहते हैं। इसमें पहले अनुसूचित जनजाति, फिर अनुसूचित जाति। पिछड़ी जाति तब सवर्ण की नियुक्ति सूची बनती थी। सभी विभागों में ग्रेडिशन सूची बनती। मैरिट के आधार पर भर्तियां होतीं। लेकिन इस अवसर को समाप्त करने के लिए कर्मचारी चयन आयोग बना कर समाप्त कर दिया गया। बैकलाग शब्द पर ताला लगा दिया गया।

जब पिछड़ी जातियों का 27 प्रतिशत आरक्षण लागू हुआ और पूरे देश में इसका विरोध सवर्ण जातियों ने किया। मजे की बात यह थी कि मंडल कमीशन के विरोध में पिछड़ी जातियां भी उतर आयीं थीं, मोर्चा दलित जातियों ने संभाला था। हमलोग आंदोलन में कूद पड़े थे। इस आरक्षण में सिख और मुसलमानों की भी जातियां थीं लेकिन उन लोगों ने रुचि नहीं ली। सरकार क्रीमी लेयर सीमा निर्धारित कर दी थी। मैं जब तहसील सदर कानपुर में जाति प्रमाण पत्र जारी करता था तो तहसील की दीवार पर ओबीसी जातियों की सूची पेंटर से लिखवा दिया था जिससे पिछड़ी जातियों को पता चल सके उनकी जाति आरक्षण की पात्र है और वह अपना जाति प्रमाण पत्र बनवा लें और इसका लाभ ले सकें। लाखों जाति प्रमाण पत्र हमने बनाये। इसमें मुसलमान और सिख भी आये और लाभान्वित हुए। रमगढ़िया सिखों ने हजारों प्रमाण पत्र बनवाये और उन्हें नौकरियों में जाने का अवसर मिला।

आरक्षण का अर्थ ही है अवसर की प्राप्ति

समाज में 100 में 50 प्रतिशत आरक्षण सवर्ण जातियों के पास पहले से था। 50 प्रतिशत में 27 प्रतिशत ओबीसी और 23 में अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित

जाति के मध्य बंटवारा था। लेकिन सीधी भर्ती के कारण 70 प्रतिशत आरक्षण सवर्णों के पास था। फिर भी यह वर्ग आरक्षण के विरुद्ध विष वमन करता है।

धीरे से सवर्ण आरक्षण की मांग उठने लगी। इसकी शुरुआत दलित नेताओं ने सबसे पहले की। रामबिलास पासवान, मायावती और रामदास आठवले शनैःशनैः अपने मंचों से सवर्ण आरक्षण की मांग उठाते रहे हैं। जब कि 50 प्रतिशत आरक्षण उनके पास पहले से था। दलित नेता वोट के लिए अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारते रहे। दलितों और पिछड़ी जातियों का आरक्षण पूरा नहीं हुआ और मोदी ने आर्थिक आधार का सहारा ले दस प्रतिशत आरक्षण और सवर्ण जातियों को दे दिया। संविधान में संशोधन भी करवा दिया। इसका समर्थन सभी दलों ने कर दिया।

एक और खेल काफी दिनों से चल रहा है कि पिछड़े वर्गों की कुछ जातियां अनुसूचित जाति में शामिल कर दी जाएं ताकि वे आरक्षित सीट से चुनाव लड़ सकें। मायावती ने भी 17 जातियां शामिल करने का प्रस्ताव भेजा था। यह बड़ा ऊंचा खेल था क्योंकि पिछड़ी जातियां दलितों के साथ रोटी-बेटी का संबध नहीं करतीं न शादी समारोह में आमंत्रित करते हैं। गांव में ये जातियां अत्याचार करती हैं। इनका व्यवहार सवर्णों जैसा है। हम लोगों ने जम कर विरोध किया। वरन् कभी भी चमार, कोरी, धानुक, धोबी लोकसभा या विधानसभा में नहीं जा पाते। और यह अवसर हाथ से चला जाता।

आरक्षण को अवसर का हथियार मान कर भारत की तमाम जातियां आरक्षण के लिए आंदोलन खड़े कर दिए। जाट, गूजर, मराठा तथा पाटीदार आंदोलन ने सरकारी बसों में आग लगा दी। यह सब पिछड़े वर्ग आरक्षण में शामिल हैं फिर भी अलग जाति की मांग से देश को जला दिया। इसमें एक बात निकल कर आयी कि या तो दलितों को आरक्षण से उनके अवसर समाप्त करो या हमें अलग से दो।

यह बड़ा खेल है दलितों और आदिवासियों को सामाजिक और आर्थिक तौर पर उठने न देना। और भी यही कि प्राइवेट सेक्टर में भी आरक्षण के खेल ने सरकारी आरक्षण भी समाप्त हो गया। मुख्यधारा में जुड़ने का मार्ग भी बंद हो गया। दलितों के नेताओं ने लोकसभा में इसकी आवाज तक नहीं उठाई। द्रोपदी के चीर हरण की तरह सब सिर झुकाए बैठे रहे। आजादी के बाद की एक पीढ़ी तक ही यह अवसर मिले।

24 सितंबर 1932 के पूना समझौता में पृथक निर्वाचन के बदले डॉ. आंबेडकर को आरक्षण पर समझौता करना पड़ा था। यह अवसर तब मिला था जब भारत में ब्रिटिश इंडिया सरकार थी। लोग कहते हैं कि आरक्षण की अवधि समाप्त हो

गई है। राजनैतिक दल जबर्दस्ती इसे बढ़ा रहे हैं। जो समझौता गांधी और बाबासाहब आंबेडकर के मध्य यरवदा जेल में हुआ था, वह अंग्रेजों के पास है : उसमें अवधि नहीं लिखी गई थी। खैर आरक्षण कोटा पूरा करने के सैकड़ों ज्ञापन हमलोग कानपुर से भेजते थे। जुलूस और प्रदर्शन करते थे। मायावती के शासनकाल में बैकलॉग पूरा हुआ था। उसमें सबसे अधिक पिछड़ी जातियों को लाभ मिला था। कानपुर में मैं स्थापना देखता था, रात दिन जुट कर संग्रह अमीन और संग्रह सेवकों की ग्रेडीसन सूची बना कर नियुक्तियां की थीं। तमाम लेख लिखे थे।

भूमि बंटवारा

जमींदारी उन्मूलन सन् 1950 में हुआ और कहा गया जो भूमिहीन हैं उन्हें खेत का मालिक बनने का अवसर दिया जाय। इसके लिये बाबा साहब ने भी मांग उठाई थी कि ऊसर बंजर और परती भूमि दलितों को बांट दी जाय। दादासाहब गायकवाड़ ने भूमि बंटवारा आंदोलन चलाया था : हजारों लोग जेल गए थे। जमींदार अपनी जमीन कानून बन जाने के बाद भी बांटने को तैयार नहीं थे। उन लोगों ने विनोबा भावे के भूदान यज्ञ में जमीनें शामिल कर दी थी। भूदान अधिनियम 1953 बना दिया गया। और वह जमीनें दलितों को देने से बचा ली गई।

भारत में प्रमुख संसाधन कृषि और पशुपालन था, जिसे भारत का उत्तर पाषाण काल कहा जाता है। वह यहां के अनार्यों का प्रमुख पेशा था। आर्यों ने जब आक्रमण किया तो सबसे पहले खेतों में आग लगाई, फसलें जलाई : पशुओं का बलि दिया, छीना और अग्नि होत्र करके अन्न घी में मिला दिया। उनके नेता विष्णु ने अनार्यों का वध किया। इंद्र ने उनके किलों को ध्वस्त किया। यह आर्यों का अनार्यों को बर्बाद करने के लिए उनके संसाधनों को नष्ट कर देने का अभियान था। उस काल को इतिहासकारों ने बर्बर काल कहा और हजारों वर्षों से भारत का शासक वर्ग आदिवासी और अछूत बन रह रहा है। 2016 में नरेंद्र मोदी ने यही काम किया था कि दलित समाज को आर्थिक तौर से कमजोर और गुलाम बनाये रखने का, नोटबंदी से और कोई विकल्प नहीं था।

बाबासाहब आंबेडकर ने कहा था कि 'महार समाज बासी जूठी रोटी मांगते हैं, इन्हें ऊसर बंजर दे दी जाय।' वर्ष 2005 में हमने भूमि बंटवारा आंदोलन शुरू किया। जुलूस निकाल कर प्रदर्शन किया और ज्ञापन दिया। कहा 1282-83, 1311-12 फसली की खतौनी में दलितों के पूर्वजों के नाम हैं। जमींदारों ने उनसे माफी लिखा लिया था पड़ताल करके उनकी जमीनें वापस कर दी जाय। ज्ञापन

की कापी लेकर कानपुर के दलित पैंथर के नेता पूर्वांचल में भूमिहीनों से फार्म भरवाये और जमीन के नाम पर पैसा लिए। दाल-रोटी का साधन बना लिया। बहुत बाद में पता चला और वह आंदोलन नेताओं की भेंट चढ़ गया।

आजादी के बाद आरक्षण के अतिरिक्त गरीबों के लिए पंचवर्षीय योजनायें बनीं। लेकिन उनका क्रियान्वयन नहीं हुआ। हम लोगों ने मांगना शुरू किया तो भगाने के लिए सामूहिक हत्याएं शुरू हो गई। पलायन शुरू हो गया। उन सामूहिक नरसंहार के खिलाफ हम लोगों ने आंदोलन खड़ा किया।

बेलछी, भागलपुर, नारायणपुर, कुफलटा, देवली साढूपुर, गोहाना, झज्झर, खैरलांजी फतेहपुर, कानपुर में सिंहपुर के खिलाफ कानपुर शहर में उबाल आ गया। बहुजन समाज पार्टी उस समय नहीं थी और पूरा दलित एक था। दलित पैंथर भी अत्याचारों के खिलाफ लड़ रहे थे। बाद में बसपा द्वारा आंदोलन पर रोक लगाये जाने से लड़ने वाले शांत हो गये। 1980 में इंदिरा गाँधी पुनः सत्ता में आयीं और स्पेशल कम्पोनेंट प्लान के द्वारा ऋण और अनुदान देना शुरू किया। दलाल हावी हो गये। सन् 1981 में अखिल भारत अनुसूचित जाति परिषद् के बैनर से विशाल जुलूस निकाला और सीधा लाभार्थियों के खाते में पैसा भेजा जाय। चेक दलाल को न दी जाए। जमानत न मांगी जाय।

उद्योग

भारत में दलितों की उद्योग में भागीदारी कम है फिर भी कुछ लोग मेहनत करके उद्योग खड़े किए हैं। श्री चंद्रभान जी, संजय पासवान द्वारा एक सर्वे कराया था। दस लाख तक के टर्न ओवर के कितने दलित व्यापारी हैं। सेडेलरी का काम करने वाले लोग मिले थे जिनका माल विदेश जाता है। बाकी घरों में जूते-चप्पल का उत्पाद होता है। कानपुर इसकी बहुत बड़ी मंडी है। सूअर के बालों का काम खटिक समाज के बड़े व्यापारी करते थे, जिसे ब्रिस्टल कहते हैं। चमड़े का काम अब मुसलमानों के हाथ में है। चमार उसमें मजदूर हैं कभी मालिक थे।

सुअर का काम दलितों के हाथों में है लेकिन यह उद्योग को सवर्ण लोगों के हाथों चला गया है, पीगरी फार्म खोल लिए हैं। इन उत्पादों पर दलितों का पहला हक बनता है, लेकिन मुसलमानों और हिंदुओं के लोगों ने छीन लिया है। खटिक पासी, दुसाध, बाल्मीकि और धानुक जातियों का पैतृक पेशा भी उनके हाथों से चला गया है।

वर्ष 2018 में दिल्ली से एक टीम आई थी जिसका नेतृत्व श्री के बी सक्सेना

कर रहे थे। उनका विषय था 'क्या दलित जातियां अपने पैतृक पेशे को कर रहीं हैं?' कानपुर में कुम्हार पैतृक काम करते मिले। वह मेरे साथ गांव भी गए। किसी भी जाति के लोग पैतृक धंधा करते नहीं मिले। सूप बनाने वाला एक घर मकनपुर में मिला। वह जाति से थे। वहीं चमार जाति की कई जूते की दुकानें मिली। खाड़ू की टोकरी बनाते मिले।

नट भैंस का व्यापार करते हैं। कंजड़ सुतली डोरी काम करते हैं। लोहार लोहे के औजार बनाते हैं। बढ़ई लकड़ी का काम करते हैं। यह उनका पैतृक पेशा है कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते हैं, उसे छोड़ा नहीं है। काछी सब्जी बोने और बेचने का काम करते हैं। नाई बार्बर का पेशा नहीं छोड़े हैं। इन जातियों को आरक्षण के अवसर से मुख्यधारा में जोड़ा जाना चाहिए। धीरे-धीरे सरकारें इनके हकों को छीनती जा रही हैं।

लेखक चार दर्जन से अधिक किताबों के रचनाकार हैं, संपर्क–6386963580

सुभाष गौतम

–दिल्ली

भारत वर्ष आरक्षण का देश है। अगर महान समाज वैज्ञानिक कार्ल मार्क्स के अनुसार अब तक विद्यमान समाजों का लिखित इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है तो भारत में वह आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष का इतिहास है, इसलिए यहाँ शक्ति के स्रोतों पर काबिज सुविधासंपन्न तबकों और वंचित बहुजनों के मध्य समय-समय पर आरक्षण पर संघर्ष होते रहते हैं। इसी बीच मोदी सरकार ने चालाकी से गरीब सवर्णों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय किया, जिसे दो दिनों में ही संविधान में संशोधन करते हुए विधेयक को संसद में पारित भी करा दिया। इतनी तेज गति से उत्पन्न हुए सवर्ण आरक्षण से बहुजन समाज उबर भी नहीं पाया था कि विभागवार आरक्षण पर भी मोहर लग गयी। बहुजन समाज इस आरक्षण को लेकर आंदोलित है।

न्यायिक प्रक्रिया पूरी होने से आदिवासियों, दलित बहुजन समाज को तबाह करने, उनके हितों को नष्ट करने, और उनके अधिकारों को समाप्त करने पर आतुर है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने आदिवासियों को उखाड़ फेंकने का फैसला

दिया है। इससे उनकी पुश्तैनी भूमि, आवास और सम्मान से जीने का अधिकार छीन जायेगा। इससे सर्वोच्च न्यायालय के अन्याय के शिकार आदिवासी समाज अपने आस्तित्व की लडाई लड़ रहा है, तो हमारी भी जिम्मेदारी है कि समाज के सामाजिक-आर्थिक आस्तित्व की लड़ाई में हम उनके साथ खड़े हों।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के चलते 13 प्वाइंट रोस्टर के तहत एससी/एसटी/ओबीसी के आरक्षण और प्रतिनिधित्व को यूनिवर्सिटी, कालेज, एवं रेलवे में समाप्त सा कर दिया गया है और सरकारी विभागों को मनमाने ढंग से परिभाषित किया जा रहा है। इस फैसले को लागू करने की मंशा बता रही है कि सरकार मनमाने तरीके से बैंक की शाखा और सरकारी स्कूल को इकाई मानकर एससी-एसटी-ओबीसी के आरक्षण को पूरी तरह से निष्क्रिय बना सकती है। आरक्षित वर्गों के छात्र और शिक्षक 13 प्वाइंट रोस्टर की जगह पहले वाला 200 प्वाइंट रोस्टर लागू करवाने की जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें अब एक नया आयाम जुड़ने लगा है। वंचित वर्गों के ही नेता और बुद्धिजीवी यह मांग उठाने लगा है कि 13 प्वाइंट रोस्टर को ही मान लिया जाये पर, उसे रिवर्स कर दिया जाय। अर्थात उल्टा कर दिया जाये कि जो भी भर्ती निकले उसमें 1-3 तक क्रमशः एससी, एसटी, और ओबीसी को अवसर मिले, चौथे नंबर से सामान्य वर्ग की भर्ती हो। क्योंकि सामान्य समाज तो पहले से सुविधा सम्पन्न रहा है और दलित आदिवासी समाज अधिकार विहीन सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़ा रहा है। वंचित समाजों के बुद्धिजीवियों और नेतृत्व वर्ग के मध्य बड़ी तेजी से उभरता रिवर्स 13 प्वाइंट रोस्टर का विचार बारह साल पुराने एक सवाल को बदले हालात में नए सिरे से और बड़े आकार में राष्ट्र के समक्ष खड़ा कर दिया है। याद रहे पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कभी यह कहकर राष्ट्र को चौका दिया था कि संसाधनों का पहला हक मुसलमानों का है। वह बयान उन्होंने मुस्लिम समुदाय की स्थिति को उजागर करने वाली सच्चर रिपोर्ट के आने कुछ दिनों बाद दिसम्बर 2006 को राष्ट्रीय विकास परिषद् (एनडीसी) की बैठक में दिया था। एनडीसी की उस बैठक में उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि देश के संसाधनों पर पहला हक पिछड़े व अल्पसंख्यक वर्गों और विशेषकर मुसलमानों का है।

13 प्वाइंट रोस्टर के जरिये एससी, एसटी, ओबीसी के बाद सामान्य वर्ग को देने का जो सवाल बहुजन नेतृत्व और बुद्धिजीवियों की ओर से खड़ा किया जा रहा है वह एक बड़ा प्रश्न बनकर राष्ट्र के समक्ष खड़ा होने जा रहा है। स्मरण रहे ढेरों जानकार लोगों के मुताबिक जो 13 पाइंट रोस्टर उच्च शिक्षा में नियुक्तियों

का आधार बनने जा रहा है, वह कल उच्च शिक्षा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी लागू हो सकता है, अतः इसका असर कालेज/विश्वविद्यालयों से आगे भी होने जा रहा है। अतः यह बात छिपी नहीं है कि इसका पूरा ताना-बाना बहुजनों को नॉलेज सेक्टर से आउट करने तथा शिक्षा के क्षेत्र में उन सवर्णों का एकाधिकार स्थापित करने के मकसद से तैयार किया गया है, जिनका राज-सत्ता में अप्रतिरोध एकाधिकार स्थापित करने का सफल उपक्रम चलाया गया है, जिनके शक्ति के स्रोतों (आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और शैक्षिक) पर वर्चस्व की दुनिया में कोई मिसाल ही नहीं है। अगर बहुजन ऐसे ही चुप्पी साधे रखे तो यह सरकार 13 प्वाइंट रोस्टर का षड्यंत्र रचकर तकरीबन 95% नौकरियां सवर्णों के हिस्से में डाल देगी। ऐसे में बहुजन नेतृत्व और बुद्धिजीवी वर्ग को अवसरों और संसाधनों के बंटवारे में हर क्षेत्र में एससी-एसटी और ओबीसी को प्राथमिकता दिए जाने की लड़ाई में उतरना चाहिए, बिना इसके न तो बहुजनों को उनका वाजिब हक मिलेगा और न ही सामाजिक और आर्थिक गैर-बराबरी का खात्मा ही होगा, जिसका सपना हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने देखा था।

(लेखक जनसंचार में एम.ए. हैं।)
संपर्क–9310637173

फागू लाल

–गोरखपुर, उ.प्र.

विमर्श का विषय अत्यन्त विषद, उपयोगी होने के साथ-साथ वर्तमान परिवेश में अत्यन्त प्रासंगिक है। मानव सभ्यता के आरम्भ से ही आमजन और प्रभुवर्ग के मध्य अवसरों और संसाधनों के स्वामित्व, उपयोग, दोहन, एकाधिकार के प्रश्न पर निरन्तर संघर्ष होता रहा है। अवसरों को सामान्यता–'प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ वह करने की इच्छा रखता है, करने की स्थिति या सुविधा का उपलब्ध होना' माना जाता है, जो परवर्तीकाल में लोककल्याणकारी राज्यों द्वारा वंचित या उपेक्षित मानव समुदाय में उपलब्ध संभावनाओं (potential) को उभारने, कौशल का विकास करना, क्षमता का सृजन करना भी अवसरों की उपलब्धता की श्रेणी में माना गया है।

मानव सभ्यता की विकास यात्रा में मानव मात्र को बिना किसी भेद-भाव के अवसरों की उपलब्धता, सभी वर्गों, सभी समूहों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की अवधारणा/संकल्पना लोकतांत्रिक समाज की कसौटी व चुनौती माना गया है।

'संसाधन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है—A Stock or supply of money, materials, Staff and other assets that can be drawn on by a person or Organization in order to function effectively.' अर्थात् पूँजी, धन, प्राकृतिक संसाधन, बुद्धि - कौशल, चातुर्य-प्रतिभा-शिक्षा इत्यादि संसाधन के प्रकार बताये गये हैं। भारतीय संदर्भ में धार्मिक कर्मकाण्ड, पूजा-अर्चना की पद्धति, संस्कार इत्यादि शक्ति के स्रोत के साथ-साथ संसाधन की श्रेणी में माना जाना आवश्यक है।

वैदिक काल से भारत के मंदिरों में पुजारी बनने का अधिकार जन्म से निर्धारित होता रहा है। भारतीय मठ-मंदिर आस्था का केन्द्र होने के साथ-साथ सत्ता, पूँजी, प्रभुत्व के भी केन्द्र रहे हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 20 लाख हिन्दू मंदिर स्थापित हैं। भारत के लगभग 50 मंदिर ऐसे हैं, जिनकी वार्षिक आय हजारों करोड़ रुपयों से अधिक है। स्वतंत्र भारत के विधिक इतिहास में एन. आदित्यन बनाम ट्रावनकोर देवास्वाम बोर्ड (AIR 3538 S.C.) में गैर-ब्राह्मण को मंदिर का पुजारी नियुक्त करने का आदेश उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया है, किन्तु धार्मिक नियमों व परंपराओं के अनुसार भारत के मंदिरों में पुजारी बनने का एकाधिकार द्विज समुदाय को ही प्राप्त है। भारत का बहुसंख्यक समुदाय उक्त प्रकार के सेवा से जन्मगत भेदभाव के कारण वंचित है, जबकि उक्त स्थापित मंदिर संसाधनों के अथाह स्रोत हैं। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार भारत में 799 विश्वविद्यालय, 39701 कालेज संचालित हैं। भारत के प्राथमिक विद्यालयों में 5,816, 673 तथा माध्यमिक विद्यालयों में 2,127,000 शिक्षक शिक्षण कार्य हेतु नियोजित हैं, जिनमें वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व अत्यन्त कम है।

उक्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के 72 वर्षों के बाद भी वंचित समुदाय एवं सम्पन्न समुदाय के मध्य गैर-बराबरी में बहुत कम अन्तर आया है। भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में आर्थिक गैर-बराबरी को कम करने के लिये राज्य सरकारों को जिम्मेदार बनाया गया है। विगत 5 वर्षों में आर्थिक गैर-बराबरी में तीव्रता से वृद्धि हुई है। राष्ट्र के समृद्धि, लोगों में परस्पर शान्ति एवं सदभाव बनाये रखने, समुदायों के संतुलित एवं समग्र विकास हेतु वंचित एवं उपेक्षित वर्गों (मूलनिवासी, आदिम जाति, अनु. जनजाति अनु. जाति अन्य

पिछड़ा वर्ग एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों) को अवसरों की उपलब्धता एवं संसाधनों के स्वामित्व, भोगाधिकार में आनुपातिक प्रतिनिधित्व अनिवार्य है, उक्त के अभाव में वर्तमान सरकार का उद्घोषित संकल्प ''सबका साथ, सबका विकास'' मात्र दिवास्वप्न साबित होगा।

(लेखक सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

राजवंशी जे. ए. अम्बेडकर

–सिवान, बिहार

अभावग्रस्त लोगों का क्योंकि यह उनका हक है भाई! इसमें कैसी परिभाषाएँ? किस तरह का सिद्धान्त!? कैसा सोच!? कैसा विचार!? बड़े-बड़े एयरकंडीशन रूम में बैठे सो कॉल्ड नव-अम्बेडकरवादियों की विद्वता को नजर अंदाज करते हुए आसान भाषा में समझाने के लिए कहें तो जो भूखें हैं उन्हें रोटी चाहिए बस।

जब रोटी का वितरण शुरू होगा तब सबसे पहले सवाल बनेगा अभावग्रस्त कौन है और उन तक कैसे इस रोटी को पहुँचाया जाए!? क्योंकि 47 के आरक्षण के तहत तो हम लगभग फेल हो चुकें हैं। मेरे कथन से आश्चर्यचकित न हों, होतें भी हैं तो आप सिर्फ एक अभिनय कर रहें हो सच न जानने का! हम सभी को पता है कि हम एक महत्वपूर्ण लड़ाई में बहुत ही पीछे चल रहें हैं और 'जय भीम-जय भीम' 'बाबा साहब अमर रहें' जैसे तमाम नारों को हमने ईजाद कर लिया है ताकि हमारे आंखों पर पर्दा पड़ा रहें। हम इन नारों की आड़ में 'हार जाने' के भय को छुपा रहें हैं। सबसे पहले तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हम यह लड़ाई लगभग हार चुकें हैं। यहां से रणनीति और नेता बदलने के अलावा अब कोई उपाय ही नही बचा है।

इन तमाम बातों से चार सवाल उभरतें हैं जिनपर हम संक्षेप में बारी-बारी से विचार करेंगे, क्योंकि यहां शब्द सीमा है। कम लिख रहा। इशारों में लिख रहा हूँ। आप सोचिएगा, भावना को पकड़ियेगा और समझ आये बात तो भीड़ जाइएगा। अभावग्रस्त लोगों के लिए सोशल डाइवर्सिटी मिशन में।

सवाल नम्बर 1. अभाव ग्रस्त लोग कौन? इस सवाल को हम और बेहतर करें तो 'भारत में अभाव ग्रस्त लोग कौन?'

सवाल नम्बर 2. इन लोगों तक संसाधनों की पहुँच कैसे सुनिश्चित करें? यह बहुत ही बड़ा सवाल है क्योंकि हम एक बार बुरी तरह पिछड़ चुकें हैं!

सवाल नम्बर 3. रणनीति में क्या खराबी है?!?

सवाल नम्बर 4. नेता बदलें।

अब जवाब की तरफ आतें हैं। इतना संक्षेप जैसे चेब का एग्जाम में सवाल जवाब चल रहा हो लेकिन मेरी मजबूरी के साथ यह मुझे जरूरी भी लग रहा ताकि हम इस तरह के बातों से 'सीधी लड़ाई' के लिए तैयार हो सकें!

जवाब 1. अभाव ग्रस्त लोग कौन हैं के जवाब के लिए हमें लम्बे-चौड़े बहस से बचने के लिए यह पता कर लेना चाहिए कि कौन अभावग्रस्त नहीं है?

तो जवाब यह है कि वो 20% लोग जिन्हें ऑक्सफॉम की रिपोर्ट और खुद भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण भारत का कर्ता-धर्ता मानती है। जिनके पास भारतीय पूंजी का कुल 90% हिस्सा है। जब हम नमक तेल के लिए चक्कर लगा रहे थे, तब भारतीय सर्वेक्षण (2014) कहता है की इन 20% लोगों ने मात्र छः उत्पादों में छूट पाकर के 16 अरब डॉलर कमाया! चौक गएं। यह उत्पाद थे—रसोई गैस, रेल, उड़ान, स्वर्ण एवं किरोसिन व्यापारी। अच्छा चलिए और साफ करता हूँ, पिछले वर्ष एक फ़िल्म आई थी 'बाजार' जिसमें हीरो के रूप में काम करने वाले सैफ अली खान बोलते हैं—'इस देश को सालों से अडानी-अम्बानी-टाटा-बिरला चला रहें हैं, थोड़ा हक़ तो हमें भी बनता है?'

जी हाँ यह 20% लोग यहीं सवर्ण हैं जिनके पास 90% धन जमा है!! बल्कि होना यह चाहिए कि था कि बराबर-बराबर सबका हक़ हो संसाधनों पर। और चूंकि इन 80% लोगों के पास मात्र 10% पैसे हैं तो प्राकृतिक एवं आर्थिक सभी पर इनका प्राथमिक हक़ हो जाना चाहिए जब तक लेवल एक नहीं हो जाता। मैं यह नहीं कहता कि यह हक़ भारतीय मूलनिवासियों को ही मिले! अब यही इत्तेफाक है कि यही वर्ग पीछे मुख्यधारा में आने के बावजूद पीछे छूटते जा रहा है तो इसके रफ्तार के लिए इसे प्राथमिकता मिले। यह एक संयोगवश (साजिशन) घटना ही है इसी कारण अभावग्रस्त और मूलनिवासी के शब्द में फर्क खत्म हो गया है।

जवाब 2. जैसा कि भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण 14-15 को हम देखें तो हम पातें हैं कि रोजगार निर्माण के बात को ही खत्म कर दिया गया है और वहां नया शब्द डाला गया है 'कैशल का विकाश'! ऐसे में हम संसाधनों पर हक़ कैसे पाएं!!

कौशल तो हमारे अंदर पहले ही उमड़ रहा है। हर काम हम कर हैं, करते आये हैं! जबकि पहले भी हमें काम देने से परहेज किया गया है अब भी वही! ऐसे भी अब यह जरूरी हो गया है कि काम की मांग जबरदस्ती हो। पहला तो हर हाथ को काम संख्या के हिसाब से। दूसरा, यह निजी कार्यालयों में जनसंख्या अनुसार काम। यह बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण है लेकिन इसमें एक समस्या है, हमें तुरन्त लाभ नहीं मिलेगा। तुरन्त लाभ के लिए चाहिए कि जितनी सीटें जहां जहां बची हैं हम अपनी भागीदारी में लड़े और तब तक नए बहाली रोक दिए जाएं जब तक संख्या अनुपात के लिए बात बन नहीं जाती। ऐसा नहीं होने की स्थिति में एक बड़ा रुख अख्तियार करना पड़ेगा। सूबे के हर सरकारी खेत पर अधिकार कर लो हर सरकारी निवास कार्यालय पर शांत अनशन कर दो—जिसका रूप यह हो मुंह बंधे हो हाथ में हथकड़ी हो पूरे देश में और जब मांगे पूरी नही होती अनशन पर जाने वाले के घर बच्चों को आर्थिक मदद दी जाए।

जवाब 3. नव आंबेडकरवादियों ने आंबेडकर के बाद 70 साल तक 'ब्राह्मण हेट' की राजनीति की है और मिला क्या हमें! हम और पिछड़ते चले गएं! हम उन मुद्दों पर अपनी ऊर्जा खर्च करते गए। जहां लड़ाई थी ही नहीं कभी! हमने लम्बे समय तक ब्राह्मण के विरुद्ध अभियान चलाया मन्दिर को कोसा। यह सब सोचे बगैर की हमें मिल क्या रहा है!? हमें मिले हुए लाभों को सार्वजनिक करना था, संविधान आम करना था, सरकार के चेहरे सरकार के रवैये को आम करना था लेकिन हम लगें रहे ब्राह्मण को कोसने में। हमें आज भी ऐसा लगता है कि एक दलित प्रधानमंत्री बन जायेगा तो स्थिति सुधर जाएगी। नीला सूरज निकल जाएगा। हम एक बहुत बड़े भ्रम में हैं जहां से हमें निकलना है। हमारे बढ़े हुए लोग अपनी बढ़ोतरी जारी रखने के लिए छूट चुके लोगों को गुमराह कर रहें हैं।

जवाब 4. नेता बदलने के विचार पर सबसे पहले हमारे ख्याल में जो चौकाने वाला सवाल आता है क्यों!?! इसका दो बिंदुओं में जवाब है। एक तो हमारे रणनीतिकार हमारे साथ धोखा कर हैं। जय भीम के नारे में हमें बरगला रहें हैं। दूसरा बिंदु तो यह है कि ये अभाव में उपजे वह लोग हैं जिन्हें न तो राजनीति की समझ है और न विश्लेषण की क्षमता है : न यह पूर्ण रूप से सामाजिक जानकारी रखते हैं और न ही इनमें कोई भी त्याग है : अलबत्ता मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री सभी को बनना है।

मसलन हमारे बढ़े हुए लोग हमें रोज भड़काते हैं...सरकार यह है वो है, हमें

समानता नहीं मिलती—हमें आंदोलन करना होगा जबकि इसके ठीक उलट इनके लड़के हमारे बीच उठना बैठना तो अपमान समझतें ही समझतें हैं। पढ़ते भी 50हजार वाले स्कूल में हैं और वो आंदोलन के दिन मसूरी, मनाली या मल्टीप्लेक्स में फिल्में देखने जाते है और जिस दिन हम लड़ भीड़ कर आगे आते हैं ये लोग हेलीकाप्टर जैसे अपने लड़के को हमारे ऊपर खड़े कर देते हैं।

दलितों के अंदर थोड़े-बढ़े हुए लोग दलितों का स्वघोषित मसीहा बनने लगे हैं। पैसे पद से बढ़े हुए ये दलित अपने कमरों से बैठ कर विभिन्न माध्यमों से हमें ब्राह्मण विरुद्ध लड़ाई में धकेल रहे हैं! जबकि हमें लड़ना ब्राह्मण से नही ब्राह्मणवाद से है जिसमें ये लोग भी पूरे-पूरे रूप से शामिल है।

अतः इन बढ़े हुए लोगों को धकिया कर हमें नीचे के लोगों को प्रतिनिधित्व करने का मौका देना होगा वह भी सक्रिय रूप में।

धन्यवाद।।

(लेखक दलित राजनीति विश्लेषक हैं, संपर्क : मो. 8651612333)

डॉ. अनिल कुमार

—दिल्ली

यह बहुत गंभीर सवाल है कि किसी भी देश के संसाधनों और अवसरों पर पहला अधिकार किसका हो? यह सवाल जितना गंभीर है उतना ही सहज और सरल भी है। लेकिन आगे बढ़ने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि संसाधनों और अवसरों से हमारा क्या तात्पर्य है?

किसी भी देश की प्राकृतिक सम्पदा उसका पहला संसाधन है। इसे हम प्राकृतिक संसाधन भी कहतें हैं। इसके बाद के संसाधनों को मानव निर्मित संसाधन कहते हैं। इसमें वे संसाधन आते हैं जो जिसे मानव ने बनाया हो। लेकिन मानव निर्मित संसाधन भी प्राकृतिक संसाधनों से ही बनते हैं। प्राकृतिक संसाधन के बिना किसी भी मानव निर्मित संसाधन की कल्पना नहीं की जा सकती है। अवसर भी संसाधनों के सन्दर्भ में ही इस्तेमाल किये जातें हैं। क्योकि अवसर के बिना हम संसाधनों के उपयोग नहीं कर सकतें हैं। इन दोनों के सन्दर्भ में एक सवाल आता है कि

संसाधन किसका है? उसका जिसके जमीन पर है या फिर उसका जिसने उसे उपयोग के लायक बनाया है या उसे खोजा है?

पूंजीवादी देशों में संसाधनों पर उसका हक़ माना जाता है जिसने उसे खोजें हैं या फिर उसे आधुनिक उपयोग के लायक बनाया है। क्योंकि कोई भी चीज अपने आप में संसाधन नहीं होता है। जबतक आपको यह नहीं मालूम है कि उसका उपयोग क्या है या फिर जब तक आप उसे उपयोग के लायक नहीं बना देतें हैं, आप उसे संसाधन नहीं कह सकते हैं।

साथ ही ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका उपयोग या हुनर आपको नहीं मालूम हो और उसे संसाधनों के सन्दर्भ में अवसर कहा जाए। हम किसी चीज को अवसर तभी कहेंगे जब हमें उसके उपयोग के हुनर मालूम हो। हम किसी को अवसर से वंचित करना तभी कहेंगे जब हममें कोई हुनर हो और हमें उसके उपयोग से वंचित कर दिया जाए। या फिर हम किसी लायक हैं लेकिन हमें कृत्रिम तरीके से उसके उपयोग करने से रोक दिया जाए। अब हम इसे भारत के सन्दर्भ में देखते हैं। मैं इसे आदिवासी समाज के सन्दर्भ में विशेष रूप से देखना चाहूंगा।

आदिवासी समाज जहाँ रहता है वह इलाका प्राकृतिक संसाधनों से भरा हुआ है। चारों तरफ उस संसाधन को लूटने की होड़ मची हुई है। आदिवासी समाज को अपने निवास स्थल से बेदखल किया जा रहा है। यह बेदखली सिर्फ निवास स्थान से ही नहीं बल्कि उसके रोजी-रोजगार को छीनना है। क्योंकि आदिवासी समाज ही नहीं बल्कि कोई भी समाज जहाँ रहता है वह सिर्फ उसका निवास स्थल न होकर जीवन-यापन का भी स्थल होता है। और यह सिर्फ आदिवासी समाज के बारे में सही न होकर सभी समाजों के बारे में है।

इस तरह आदिवासी समाज के लिए जो जमीन के नीचे हैं सिर्फ वही संसाधन नहीं है, बल्कि जो जमीन है, जो जंगल है, वह भी संसाधन है। वह जीविका का साधन है, वह जिंदगी है, साथ ही वह सांस्कृतिक पहचान भी है। इस तरह आदिवासी समाज को उसके निवास स्थल से बेदखल कर देना न सिर्फ सामाजिक बल्कि नैतिक अन्याय भी है। आधुनिक समय में यह मानवाधिकार के भी खिलाफ है। अब विचार करते हैं कि संसाधनों और अवसरों पर किसका अधिकार है?

बहुत दिन नहीं बिता है। लगभग 500 वर्ष पहले तक न तो भारत की कोई भौगोलिक सीमा निर्धारित थी और न ही उसके अंदर के रहने वालो समाजों के बीच। उस समय सीमा तय होता था कि किसका प्रभाव कहाँ तक है? इस सन्दर्भ में मैं आदिवासियों से संसाधनों की लूट और इस तरह से उन्हें अवसरों से वंचित

करने की साजिश को समझने की कोशिश कर रहा हूँ।

आधुनिक सन्दर्भ में कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि ज्यादा उन्नत हथियारों से आदिवासियों के संसाधनों पर कब्ज़ा किया गया है। चाहे वह अंग्रेज सरकार हो या वर्तमान सरकार या सरकारों के सहयोग से पूंजीपति, या पूंजीपतियों की सरकारें। अगर वे अपना स्वतन्त्र देश बना सकते होते तो आज वे देश में सबसे ज्यादा सम्पदा के मालिक होते। आज भी संसाधन उनके जमीन के नीचे है लेकिन इसे उनके मालिकाना हक़ के रूप में नहीं देखा जाता है।

आज अगर आदिवासी अपने-अपने इलाकों में स्वतन्त्र देश होते तो वे प्रचुर संसाधनों के मालिक होते। लेकिन ऐसा नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि वे आज भी नहीं जानते कि इन संसाधनों का आधुनिक समय में कैसे उपयोग करना है। आदिवासी समाज के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर बोले जाता है कि वे जंगलों में रहना चाहते हैं। उन्हें जंगलों में रहना अच्छा लगता है। यह भी कि वे आधुनिकता से दूर रहने वाले समाज हैं। वे जंगलों में रहना पसंद करते हैं।

लेकिन हमें इसका एक ईमानदार विश्लेषण करना चाहिए। और ईमानदार विश्लेषण ही हमें आगे बढ़ने में मदद करेगा। इस सन्दर्भ में ईमानदार विश्लेषण यह है कि पूरी दुनियां में बड़ी तेजी से तकनीक का विकास हो रहा है। अगर कोई समुदाय या देश या राष्ट्रीयता इससे वंचित रहता है या इससे वंचित कर दिया जाता है तो वह न सिर्फ आधुनिक विकास में पीछे रह जाता है बल्कि वह अपने संसाधनों से भी हाथ धो बैठता है, और इस तरह से वह अवसरों से भी हाथ धो बैठता है। अवसर हमेशा संसाधन और संसाधन के योग के सापेक्ष्य होता है। बिना संसाधन के अवसर नहीं होते हैं और जहाँ संसाधन है वहां अवसर भी होगा ही। अन्य शब्दों में जहाँ अवसर न जुड़ा हो वह संसाधन ही नहीं है।

यह सिर्फ आदिवासी समाज पर लागू न होकर पूरे भारत पर लागू होता है क्योंकि कि हमने आधुनिक तकनीक और संसाधनों का उपयोग पश्चिम के देशों से सीखा है। भारत ने कोई महान आधुनिक ईजाद नहीं किया है। लेकिन भारत की राष्ट्रीयता समुदायों में बसती है न कि किसी भौगोलिक क्षेत्र में, जिसमें भारत देश भी शामिल है। भारत में जिसे हम सवर्ण जाति कहते हैं, अगर हम उनकी बात करें तो उनके पास ऐसी कोई शक्ति या ज्ञान नहीं था जिसके कारण वे समाज में प्रभुत्व वाली स्थिति में पहुँच पाते।

लेकिन पहले मुगलों के आने के बाद उनके साथ रहकर और फिर बाद में डच, पुर्तगाली, फ्रांसिसी, और अंग्रेजों के आने के बाद, विशेषकर अंग्रेजों के साथ

रहकर उन्होंने शासन सत्ता की भाषा सीखा। उनके साथ रहकर उन्होंने नई तकनीक और जानकारियां हासिल की जिसके कारण वे उत्तरोत्तर मजबूत होते गए। इतना कि वे संसाधनों के दोहन या उपयोग के अवसर हासिल कर लिए। मैंने लेख के पहले भाग में ही बोला है कि संसाधन और अवसर एक साथ जुड़ा हुआ है, और कोई भी चीज तभी संसाधन बनती है जब वह किसी अवसर से जुड़ी हो अर्थात वह किसी उपयोग से जुड़ी हो।

इन सबके बावजूद हम कह सकते हैं कि भारत के सवर्णो की यह प्रवृत्ति रही है कि वे ज्ञान को अपने समुदायों से दूसरे समुदायों में ट्रांसफर नहीं करते। यही कारण है कि उन्होंने जान बूझकर गैर-सवर्णो को या कहें कि भारत में पहले से रह रहें लोगों को ज्ञान से वंचित करने का हर संभव प्रयास किया।

इसलिए भारत के पूर्व निवासी या मूल निवासी प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के आधुनिक हुनर से वंचित रह गए। ऐसे में संसाधनों और अवसरों दोनों पर कब्ज़ा करना आसान हो गया और उन्हें यह कहने का भी मौका मिल गया कि उनके संसाधनों के उपयोग किए बिना देश प्रगति नहीं करेगा। साथ ही यह भी की कि क्या आदिवासी समुदाय आधुनिक साधनों का उपयोग नहीं करता है? अगर आदिवासी समाज आधुनिक साधनों का प्रयोग करता है तो फिर वह अपने इलाके के संसाधनों का उपयोग कैसे नहीं करने देगा? फिर यहाँ एक तरह से यह तर्क सही लगता प्रतीत होता है कि संसाधनों पर उसका नहीं बल्कि देश का अधिकार है। और जब हम देश बोलते हैं तो इसका इसका आशय होता है कि देश में जो ताकतवर है वह यह निर्धारित करेगा कि कौन, कैसे और किस संसाधन का उपयोग करेगा?

इस तरह देश के संसाधनों पर आदिवासी समाज के पहला हक़ होने के बावजूद न तो वह संसाधनों का उपयोग कर पाता है और न उसे इसका बराबर का अवसर ही मिल पाता है। यही हाल देश के अन्य पूर्व निवासियों या मूल निवासियों का है जिन्हें संवैधानिक भाषा में अनुसूचित जाति, और अन्य पिछड़ा वर्ग कहते हैं। यहाँ भी मूल सवाल संसाधनों के पहले अधिकार पर न होकर संसाधनों के उपयोग के अवसर का है और यह संभव होगा आधुनिक ज्ञान, हुनर और ताकत से।

लेकिन जब हम आधुनिक लोकतान्त्रिक भारत की बात करते हैं तो पाते हैं कि समाज के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सत्ता पर देश के अल्पसंख्यक समाज का है। मैं अल्पसंख्यक धार्मिक दृष्टि से नहीं संख्या की दृष्टि से बोल रहा हूँ। और भारत में वह अल्पसंख्यक समाज ब्राह्मण और सवर्ण समाज है। हम देखते हैं कि चारों ही ओर उसका कब्ज़ा है। साथ ही कई बार न होने हुए भी हमें ऐसा

ही महसूस होता है।

प्रकृति के साधारण नियम, सामाजिक नैतिकता और मानवाधिकार की दृष्टि से देश के संसाधनों और अवसरों पर देश के मूल निवासियों का अधिकार है। लेकिन हमें चारों तरफ यह अधिकार छीनते हुए नजर आता है। इसका कारण है कि हमें सुनियोजित तरीके से उन आधुनिक ज्ञान से वंचित रखा गया जिसे उन्होंने खुद अमेरिका और यूरोप से सीखा है। दूसरी और भारत में उपजे ज्ञान को भी एक समुदाय ने अपने तक सीमित रखा। लेकिन यह भी ईमानदार व्याख्या नहीं है। ईमानदार व्याख्या यह है कि देश के पूर्व निवासियों या मूल निवासियों ने अपने ज्ञान में नवाचार लाने, उपलब्ध ज्ञान को सीखने और सामाजिक राजनीतिक रूप से संगठित होना नहीं सीखा है।

भारत में राजनीतिक लोकतंत्र है। क्या कारण है कि देश के बहुसंख्यक समुदाय राजनीतिक रूप से पराजित होते रहे हैं? इसका कारण किसी दूसरे समाजों में ढूंढने के बजाए हमें खुद में ही खोजना होगा। निर्विवाद रूप से देश के संसाधनों और अवसरों पर पहला अधिकार हमारा है, लेकिन प्रकृति चयन (natural selection) नियम के अनुसार यह हमें कोई देगा नहीं बल्कि हमें खुद लेने के काबिल बनना होगा।

(लेखक दिल्ली के एक कॉलेज में गेस्ट अध्यापक हैं। संपर्क–2717740698)

डॉ. जवाहर पासवान

–मधेपुरा, बिहार

आपके प्रश्न ने पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की याद ताजा कर दी है। नवम्बर, 2006 में सच्चर रिपोर्ट प्रकाशित होने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने एक महत्वपूर्ण बैठक में में कहा था कि संसाधनों पर पहला मुसलानों का। उनके उस बयान की तब भाजपा नेताओं ने कटु आलोचना की थी। हालाँकि डॉ. मनमोहन सिंह गलत नहीं थे। उस दौरान सच्चर रिपोर्ट में कल के शासक मुस्लिम समुदाय की बदहाली की जो तस्वीर सामने आई थी, वह सचमुच में सकते में डालने वाली थी। उनकी बदहाली से चिन्तित होकर ही तब उन्होंने उपरोक्त बयान दिया था, जिसे राष्ट्र

ने उतनी गंभीरता से नहीं लिया। किन्तु वर्तमान में आर्थिक असमानता जिस खतरनाक बिंदु पर पहुंच चुकी है, उस स्थिति में जिस तरह सुप्रीम कोर्ट ने 13 पॉइंट रोस्टर के जरिये हजारों साल के सुविधाभोगी वर्ग को अवसरों के बंटवारे में प्राथमिकता देने का का रास्ता साफ़ किया है, उससे लोकतंत्र के ढांचे के विस्फोटित होने की सम्भावना बढ़ गयी है, इसलिए आज अवसरों और संसाधनों पर पहला किसका और क्यों, यह सवाल बहुत बड़ा आकार लेकर उभरा है?

काबिलेगौर है कि संविधान सौंपने के पूर्व संविधान निर्माता डॉ. आंबेडकर ने राष्ट्र को चेतवानी देते हुए हुए कहा था हमें जल्द से-जल्द आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता उस लोकतंत्र के ढाँचे को ध्वस्त कर सकती है, जिसे संविधान निर्मात्री सभा ने बड़ी मेहनत से बनाया है। आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे के लिए अवसरों के बंटवारे में दलित, आदिवासी, पिछड़े इत्यादि उन वर्गों को प्राथमिकता देना जरूरी था, जिन्हें सदियों से आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक क्षेत्र में अवसरों से वंचित कर दुनिया के सबसे असहाय मानव समुदाय में तब्दील कर दिया था। अवसरों से पूरी तरह वंचित कर सामाजिक अन्याय का शिकार बनाये गए इन वर्गों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिए संविधान में आरक्षण का प्रावधान किया गया। किन्तु आजाद भारत में जिनको संविधान लागू करने का अधिकार मिला, वे उस जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग से रहे जिन्होंने सदियों से दलित-पिछड़ों के उत्पादन का हरण कर अपनी सुख समृद्धि का महल खड़ा किया। इनके साथ एक समस्या यह भी रही कि वे खुद को सम्पदा-संसाधनों और अवसरों के भोग का दैविक अधिकारी और वंचित दलित-पिछड़ों को अनाधिकारी समझते रहे। इसलिए संवैधानिक बाध्यता के बावजूद उन्होंने तरह- तरह से आरक्षण को निष्प्रभावी करने का सफल प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने (1) पदों के उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं,(2) पदों के लिए योग्य उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं और (3) आरक्षित पदों के लिए योग्य उम्मीदवार हैं, मगर स्वीकार योग्य नहीं हैं यानी दक्ष नहीं हैं जैसे उपायों से तमाम क्षेत्रों में आरक्षण को निष्प्रभावी करने का उपाय जारी रखा। परवर्तीकाल में उन्होंने आरक्षण को कागजों की शोभा बनाने के लिए 24 जुलाई,1991 से लागू नवउदारवादी अर्थनीति को एक हथियार के रूप में इस्स्तेमाल किया। इस मामले में वर्तमान प्रधानमंत्री का कोई जवाब नहीं, इसका सबूत अगस्त, 2018 में आया वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी का बयान है। गडकरी ने 5 अगस्त, 2018 को कह दिया, 'सरकारी नौकरियां नहीं हैं, इसलिए आरक्षण का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है।'

मोदी के कार्यकाल में आरक्षण को कागजों की शोभा बनाने का अभूतपूर्व काम हुआ। इसके लिए एयर इंडिया, रेलवे स्टेशनों, हास्पिटलों तक को निजी हाथों में देने में भारी तत्परता दिखाई गयी। इन पंक्तियों को लिखे जाने के कुछ दिन पूर्व देश के छः हवाई अड्डों और इतनी ही संख्या में चारबाग, चंडीगढ़, अमृतसर, हरिद्वार इत्यादि जैसे ऐतिहासिक महत्व के रेलवे स्टेशनों के रखरखाव का काम निजी हाथों सौंप दिया गया है। आरक्षण के खात्मे के लिए ही सुरक्षा तक से जुड़े उपक्रमों में 100 प्रतिशत 'एफ़डीआई' लागू हुई। यह सब इसलिए किया गया ताकि सभी अवसर निजी क्षेत्र में चले जाएँ जहां आरक्षित वर्गों के लिए कोई अवसर ही नहीं है। आरक्षण को कागजों की शोभा बनाने के साथ ही ऐसी नीतियाँ अख्तियार की गयीं, जिससे जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग का देश की धन-दौलत पर बेहिसाब कब्ज़ा हो गया, जिसकी बेहद बदसूरत तस्वीर जनवरी 2018 में आई ऑक्सफाम की रिपोर्ट में देखने को मिली। इस रिपोर्ट में बताया गया कि 1 प्रतिशत टॉप की आबादी, जिसमें 99.09 प्रतिशत सवर्ण हैं, के हाथ में देश की 73 प्रतिशत धन-दौलत चली गयी है।

इसमें मोदी सरकार के विशेष योगदान का पता इसी बात से चलता है कि सन 2000 में 1 प्रतिशत वालों की दौलत 37 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2016 में 58.5 प्रतिशत तक पहुंच गयी। अर्थात 16 सालों में इनकी दौलत में 21 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। किन्तु उनकी 2016 की 58.5 प्रतिशत दौलत सिर्फ एक साल के अन्तराल में 73 प्रतिशत हो गयी अर्थात सिर्फ एक साल में 15 प्रतिशत का इजाफा हो गया। शायद ही दुनिया में किसी परम्परागत सुविधाभोगी तबके की दौलत में एक साल में इतना इजाफा हुआ हो। इसी रफ़्तार से आज भी सवर्णों की दौलत में इजाफा हो रहा है। बहरहाल जिस मोदी राज में आरक्षण पर अभूतपूर्व हमला तथा सवर्णों का धन-संपदा पर कब्ज़ा हुआ, उसी मोदी के कार्यकाल के शेष जनवरी महीने में सवर्ण आरक्षण के साथ 13 पॉइंट रोस्टर के जरिये लागू होने वाले विभागवार आरक्षण पर जो मोहर लगी है, उससे अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किनका का सवाल बहुत बड़ा आकार धारण कर लिया है। क्योंकि इससे दलित, आदिवासी, पिछड़े इत्यादि जन्मजात वंचितों के लिए तमाम अवसर खत्म हो जायेंगे और उनको मुख्यधारा से जोड़ने वाला आरक्षण पूरी तरह कागजों की शोभा बनकर रह जायेगा। इसके बाद आर्थिक विषमता उस जगह पर पहुँच जाएगी जहां से लोकतंत्र के ढाँचे को विस्फोटित होने तथा देश को गृह-युद्ध में झुलसने से बचाना असंभव हो जायेगा,

इसका अनुमान हाल में निकली रिक्तियों से लगाया जा सकता है।

13 प्वाइंट रोस्टर पर कोर्ट की मोहर लगने के बाद इन पंक्तियों के लिखे जाने तक विश्वविद्यालयों/कॉलेजों में कुल 304 पदों के विज्ञापन निकले हैं। इनमें 283 अर्थात 93.09 प्रतिशत पद सामान्य, 20 अर्थात 6.57 प्रतिशत ओबीसी, 01 अर्थात 0.32 प्रतिशत एससी, 00 अर्थात 0 प्रतिशत एसटी और 0 प्रतिशत ही विकलांग वर्गों के हिस्से में आया है। यह आंकड़े बताते हैं कि वंचित वर्गों को अवसरों से पूरी तरह वंचित करने का 13 पॉइंट रोस्टर जैसा आदेश दुनिया में कहीं जारी ही नहीं हुआ। इससे जिस पैमाने पर जन्मजात वंचितों को अवसरों से दूर धकेलने का अमानवीय प्रयास हुआ है, उसकी कोई मिसाल दुनिया के इतिहास में देखने को नहीं मिलेगी। इन आंकड़ों को देखते हुए कोई भी कहेगा 13 प्वाईंट रोस्टर को उलटकर अवसरों के बंटवारे में प्राथमिकता क्रमशः एसटी, एससी और ओबीसी मिलनी चाहिए।

(एसोसिएट प्रोफ़ेसर, राजनीति विभाग, टी.पी.कॉलेज, मधेपुरा, बिहार सम्पर्क नं. 9262611402)

बुद्ध शरण हंस

–पटना, बिहार

बुद्धोत्तर काल यानी महादुष्ट राजा पुष्यमित्र शुंगकाल 150 ई.पू. से भारत देश पर दुष्ट ब्राह्मणों के आतंक का राज कायम रहा। पाटलीपुत्र का महादुष्ट राजा पुष्यमित्र शुंग बौद्ध सम्राट वृहद्रथ की हत्या कर अपना अनैतिक शासन कायम करने में सफल रहा। उसने अपने काल में महादुष्ट ब्राह्मण चिंतकों की एक टोली सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक कुव्यवस्था कायम करने के लिए बनवाई, जिसका प्रधान कुविचारक चाणक्य और पातंजलि नामक दो कुख्यात ब्राह्मण रहे। इस कुख्यात ब्राह्मणों की टोली ने ब्राह्मण उद्धारक और बहुजन संहारक एक विधान लिखा, जिसका नाम मनुस्मृति रखा, जो बनते-बिगड़ते रूप में आजतक कायम है।

मनुस्मृति द्वारा अवसरों और संसाधनों से बहुजनों के हकों को वंचित किया गया

पुष्यमित्र शुंग ने अपने राज में देशभर के बहुजनों का दमन करने के लिए ब्राह्मणशाही कायम की। ब्राह्मणशाही का मतलब देशभर में सारे अवसरों और संसाधनों पर केवल ब्राह्मणों का हक कायम करना और देशभर के बहुजनों को दुष्ट ब्राह्मणों की दया पर जीवित रखना। ब्राह्मणशाही के द्वारा बहुजनों को सत्ता और आर्थिक संसाधन यानी जिन्दगी के मूल तत्वों से महरूम कर दिया गया। जिस मानव समुदाय बहुजनों को सत्ता में भागीदारी नहीं मिली और आर्थिक रूप से उन्हें विपन्न कर दिया गया इससे सम्मान और सुरक्षापूर्वक जीने का उनका आधार ही समाप्त हो गया। ब्राह्मणकाल के बहुजन ही आज के एससी, एसटी और ओबीसी हैं। दुःसंयोग ऐसा रहा कि भारत देश में यह ब्राह्मणशाही दो हजार वर्षों से आजतक कायम है। देशभर में अनैतिक और अत्याचारी ब्राह्मणशाही कायम रहने के कारण बहुजन हमेशा के लिए शिक्षा और आर्थिक संसाधनों से बिलकुल वंचित हो गये। उस ब्राह्मणशाही का कुफल आज भी भारी चिन्ता का विषय है।

आज भी देश की सत्ता पर ब्राह्मणशाही कायम है

भारत के राज्यों में सत्ता के सिंहासन पर ब्राह्मण, सवर्ण एकाधिकार कायम किये हुए हैं। उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मणिपुर का मुख्यमंत्री राजपूत, उड़ीसा का मुख्यमंत्री कायस्थ-सवर्ण, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, असम, पश्चिम बंगाल का मुख्यमंत्री ब्राह्मण, दिल्ली, झारखण्ड, गुजरात का मुख्यमंत्री बनिया जो ब्राह्मण, सवर्णों के साथ ही सांठ-गांठ करके जीता और जागता है। अब आज की तारीख में भारत देश के मंत्रीमंडल में सत्तासीन ब्राह्मणों और सवर्णों का हाल देखिए। भारत का प्रधानमंत्री बनिया, गृहमंत्री, कृषिमंत्री, ग्रामीण विकास मंत्री राजपूत सवर्ण, रक्षामंत्री, वित्तमंत्री, रेलमंत्री, विदेशमंत्री, शिक्षामंत्री, सड़क परिवहन मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री, केमिकल मंत्री, पर्यावरण मंत्री, खाद्य मंत्री, कपड़ा मंत्री ब्राह्मण, कानून मंत्री कायस्थ। केवल खाद्य मंत्री, संचार मंत्री और स्टील मंत्री के पद पर बहुजन समाज के लोगों को सत्ता दी गयी है। मंत्रिमंडल में बहुजन समाज के लोगों की हकमारी निर्लज्जतापूर्वक की गयी है। अवसरों की समानता के आधार पर केन्द्र में एक दो मंत्री ब्राह्मण, सवर्ण समुदाय से होना चाहिए था, बाकी सारे के सारे मंत्रीपद ओबीसी, एससी और एसटी को मिलना चाहिए था।

इससे बदतर स्थिति केन्द्रीय सचिवालय में है। इन पदों पर भी ब्राह्मणों, सवर्णो की भरमार है। राष्ट्रपति सचिवालय में कुल पद 49 हैं जिनमें 45 ब्राह्मण, एससी-एसटी

के 4 पदाधिकारी हैं और ओबीसी का एक भी नहीं। उपराष्ट्रपति सचिवालय में सचिव के 7 पद हैं जिनमें सबके सब ब्राह्मण हैं, एससी, एसटी, ओबीसी के एक भी पदाधिकारी उपराष्ट्रपति सचिवालय में नहीं हैं। मंत्रियों के कैबिनेट सचिव के कुल 20 पद में 19 पद पर ब्राह्मण और मात्र 1 पद पर एससी का पदाधिकारी है। प्रधानमंत्री सचिवालय में कुल पद 35 हैं जिनमें 33 पदों पर ब्राह्मण और 2 पद पर एससी एसटी के पदाधिकारी हैं। कृषि एवं सिचाई विभाग में कुल पद 274 है जिसमें 259 पदों पर केवल ब्राह्मण हैं और 15 पदों पर एससी, एसटी के पदाधिकारी हैं। ओबीसी का एक भी पदाधिकारी इस विभाग में नहीं है। रक्षा मंत्रालय में कुल 1379 पदों पर 1331 ब्राह्मण सत्तासीन हैं और मात्र 48 पदों पर एससी, एसटी के पदाधिकारी है। ओबीसी इस विभाग में भी शून्य की स्थिति में हैं। समाज कल्याण एवं स्वास्थ्य मंत्रालय में कुल 209 पदों में 192 पदों पर ब्राह्मण और 17 पदों पर एससी-एसटी हैं। ओबीसी के पदाधिकारी इस विभाग में भी शून्य पर हैं। वित्त मंत्रालय में कुल 1008 पदों में 942 पदों पर केवल ब्राह्मण हैं और 66 पदों पर एससी, एसटी के पदाधिकारी हैं। ओबीसी का प्रतिनिधित्व यहां भी शून्य है। गृह मंत्रालय के कुल 409 पदों में 377 केवल ब्राह्मण पदाधिकारी हैं। और मात्र 19 पदों पर एससी-एसटी और 13 पदों पर ओबीसी के पदाधिकारी हैं। श्रम मंत्रालय के कुल 74 पदों में 70 केवल ब्राह्मण हैं और केवल 4 पदों पर एससी, एसटी के पदाधिकारी हैं। रसायन एवं पेट्रोलियम मंत्रालय के कुल 121 पदों पर 112 पदाधिकारी ब्राह्मण हैं और सिर्फ 9 पदों पर एससी, एसटी वर्ग के पदाधिकारी हैं। राज्यपाल एवं उपराज्यपाल के कुल 27 पदों में 25 पदों पर सिर्फ ब्राह्मण हैं और केवल 2 पदों पर ओबीसी के राज्यपाल हैं। विदेश में राजदूत के 140 पदों में से सारे के सारे राजदूत केवल ब्राह्मण हैं। इतनी निर्लज्जता पूर्व के किसी सरकार में नहीं की गयी है। देशभर में विश्वविद्यालयों के 108 कुलपति के पद में से सभी पदों पर सिर्फ ब्राह्मण कुलपति हैं। केन्द्रीय सचिवालय में प्रधान सचिव के कुल पद हैं 26, जिनमें सबके सब ब्राह्मण हैं। देशभर में उच्च न्यायालय में कुल 330 न्यायाधीश हैं, जिनमें 326 न्यायाधीश केवल ब्राह्मण हैं। सुप्रीम कोर्ट में कुल 23 न्यायाधीश में सबके सब ब्राह्मण हैं। देशभर में कुल 3600 आई.ए.एस. के पदाधिकारी हैं जिनमें 2950 केवल ब्राह्मण हैं, 600 एससी, एसटी तथा 50 पदाधिकारी ओबीसी हैं। ब्राह्मणशाही का इससे भयावह नजारा और क्या हो सकता है। एससी, एसटी और ओबीसी की इससे बढ़कर दुर्गति और क्या हो सकती है। भारत देश की दुर्दशा का एकमात्र कारण ब्राह्मणों का वर्चस्व है।

भारत का संविधान कल्याणकारी है

भारत के संविधान की धारा 38 में स्पष्ट व्यवस्था दी गयी है कि 'राज्य लोक कल्याण की वृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा।' इस धारा में यह कहा गया है कि राज्य ऐसी व्यवस्था करे जिससे सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में कायम हो। भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की वृद्धि का प्रयास करेगा। अवसरों की समानता सभी वर्ग के लोगों को नहीं देकर आज की केन्द्रीय सरकार भारत के संविधान के प्रावधानों की खुली अवहेलना कर रही है। बहुजन वर्ग के लोगों के हकों की रक्षा के लिए संविधान की धारा 46 में और भी स्पष्ट व्यवस्था देते हुए कहा गया है कि 'अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजाातियों और अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी के हितों की वृद्धि के लिए सरकार विशेष प्रयास करेगी। सरकार सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से रक्षा करने के लिए सरकार सदैव प्रयत्नशील रहेगी।'

आज की केन्द्रीय सरकार भारत के संविधान के प्रावधानों का खुला उल्लंघन कर केवल ब्राह्मण, सवर्ण के हितों की रक्षा करने और उनकी सुख-संपदा को बढ़ाने का निर्लज्ज प्रयास कर रही है। संविधान के अनुसार होना तो यह चाहिए था कि अवसर और संसाधन से भरपूर ब्राह्मण, सवर्ण को अब और अधिक न अवसर दिया जाए न संसाधन। कारण भूमि, उद्योग, व्यवसाय, आपूर्ति, ठेकेदारी, परिवहन, फिल्म उद्योग, एनजीओ, सरकारी, गैर-सरकारी सभी पदों पर अर्थोपार्जन के सभी क्षेत्रों में ब्राह्मण, सवर्ण का एकाधिकार बना हुआ है। इस एकाधिकार को कानून बनाकर रोकना बहुत ही जरूरी है। वरना बहुजन अगर ब्राह्मणों और सवर्णों का शोषण और दमन सहते हुए उग्र हो गये तब सौ चोट सुनार की और एक चोट लोहार की कहावत आज या कल चरितार्थ हो जायगी।

बहुजन अवसरों और संसाधनों की प्राप्ति के लिए मरने मिटने का आंदोलन चलायें

भारत के संविधान के प्रावधानों को विफल किया जा रहा है। बहुजनों के हितों की उपेक्षा की जा रही है। गरीब को और गरीब और अमीरों को और भी अमीर बनाया जा रहा है। पूजीपतियों को कानूनी तरीके से बैंक लूटने की सुविधा सरकार दे रही है। शासन-प्रशासन का सारा अवसर निर्लज्ज ब्राह्मणों और सवर्णों को दिया जा रहा है। अब इस सरकारी अत्याचार का एक ही विकल्प है कि बहुजन अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागरूक हों, एकमत हों और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए आक्रामक उपाय अपनावें। सरकार के गलत प्रयासों को ध्वस्त किया

जाय और पदों पर जाति वर्चस्व पर सीधा सामूहिक आक्रमण किया जाय। सरकार खुद असंवैधानिक तरीका अपना रही है, तब बहुजनों को एकजुट होकर अपने हकों की प्राप्ति के लिए जोर जबरदस्ती का तरीका निश्चित रूप से अपनाना चाहिए। दुनियां अमेरिका के निग्रो लोगों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए मिलेनियम मार्च देख चुकी है। मिस्र में तहरीर चौक पर लाखों पीड़ितों को मरो-मारो आंदोलन करते देख चुकी है। मरो-मारो आंदोलन में कर्नल गद्दाफी को प्राणों से हानि उठानी पड़ी। भारत के ब्राह्मण सवर्ण अब सिर्फ मार की भाषा ही समझेंगे : मनुहार की भाषा समझने की स्थिति में ये नहीं हैं।

(लेखक आंबेडकर मिशन पत्रिका, पटना के संपादक एवं चार दर्जन किताबों के लेखक हैं। संपर्क–9507826323)

हीरालाल राजस्थानी

–दिल्ली

कहाँ खड़ा है इस देश का उपेक्षित वर्ग?

अवसरों और संसाधनों पर पहला हक किनका और क्यों? इस प्रश्न से यह साफतौर पर उदित होता है कि इस देश में सदियों से उपेक्षित किसे और क्यों रखा गया है, क्यों वर्णाधारित व्यवस्था का निर्माण किया गया तथा इसका सीधा-सीधा फायदा किस वर्ग को जाता है और यह भी स्पष्ट हो ही जाता है कि मालिक कौन और दास कौन है। यह भी इस व्यवस्था की मानसिकता को उजागर करता है।

देखा जाए तो काबिलियतों की प्रतियोगिताओं को ही दरकिनार कर भारत मे वर्णाधारित व्यवस्था को रोपा गया। यही कारण है कि इस देश में उपेक्षित तबके (sc, st, obc) को शिक्षा और मुख्यधारा से कोसों दूर रखा गया तथा उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हिस्सेदारी से भी हमेशा ही दूर रखा गया। जबकि इन्हीं भेदभावों के तहत आरक्षण का प्रावधान किया गया था, जिसे डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में रखकर सुरक्षित किया था। क्योंकि उनका मानना था कि जब तक सामाजिक विषमताओं को नहीं पाटा जाता, तब तक आरक्षण की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

यदि उनके इस विचार को आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो अभी भी जातिगत भेदभाव अपने चरम को बनाये हुए है। हम यह कभी नहीं भूल सकते कि आज भी मंदिरों की सीढ़ियाँ चढ़ने पर, घोड़ी पर बारात निकालने पर, मूछें रखने मात्र से, अपनी मजूरी मांगने पर, स्कूलों में अच्छा प्रदर्शन करने पर, विश्वविद्यालयों की स्कॉलरशिप के नाम पर किस तरह से प्रताड़ना व हत्याएं आम होती जा रही हैं। इसे किसी भी लिहाज से नजरअंदाज व हल्के में नहीं किया जा सकता। हमारे सामने रोहित बेमुला की सांस्थानिक प्रताड़नाओं के चलते जानबूझकर आत्महत्या करने की ओर मजबूर किया गया, जैसा कि उन्हें सुसाइड नोट में साफ लिखा गया है। ये दुर्घटनाएं हमें सोचने पर मजबूर जरूर करती हैं और इस पर हमें गंभीरता से सोचना भी चाहिए।

इसके अलावा यदि कोई इनके हकों के लिए प्रश्न उठाता है तो वह इनके टारगेट पर आ जाता है। उसके साथ में मॉबलिंचिंग की घटनाएं अंजाम दी जाती हैं और उन्हें देशद्रोही घोषित कर दिया जाता है। ये जातियों के दायरे आज भी ज्यों के त्यों बने हुए हैं। इसे और मजबूत करने के लिए आरक्षण पर सरकारी नीति और नियति हमारे सामने साफतौर पर उभर आई है। हम आज भी वहीं के वहीं खड़े हैं, जहाँ डॉ. आंबेडकर छोड़कर गए थे। आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि विश्वविद्यालओं में बहुतायत में कौन नौकरियाँ पा रहे हैं, मीडिया में बैठकर कौन प्रश्न पूछ रहे हैं, क्रिकेट की टीम में कौन खेल रहे हैं, फिल्म इंडस्ट्री में कौन चमक रहे हैं, न्यायालयों में कौन फैसले करने बैठें हैं, हिंदी अकादमी, साहित्य अकादमी कौन संभाल रहे हैं, साहित्य सम्मान किसे मिल रहे हैं, कला संसाधनों के पद किसे हासिल हो रहे हैं, वाईस चांसलर कौन बनाये जा रहे हैं, सरकारों में मंत्री कौन बन रहे हैं, पद्मश्री, पद्मविभूषण, और भारतरत्न किसे मिल रहे हैं। वंचित तबका कहाँ नजर आ रहा है। सिर्फ गटर में, खेत-खलियानों में, फैक्ट्री और कारखानों में और आपकी ऊंची-ऊंची अटारियाँ बनाने में : इसके अलावा कितनी संख्या में कहां पर है, ये किसी से छुपा नहीं है।

लोकतंत्र में अंतिम व्यक्ति जो इस देश का मूलनिवासी है और जो गरीबी और जातिगत भेदभाव से जूझ रहा है, उसे ही सर्वप्रथम हक देकर बराबरी पर लाने की जरूरत है और उसी का अवसरों और संसाधनों पहला अधिकार है। क्योंकि वह काबिल होने पर भी पीछे धकेल दिया जाता है। बजाए इसके 10 प्रतिशत आरक्षण अगड़ी जातियों के लिए सुरक्षित प्रावधान कर दिया गया है। जबकि मंदिरों के धन पर इनका एकाधिकार भी है और इस पर कोई टेक्स भी नहीं। यह विदित

रहे के आरक्षण जातिगत भेदभाव के आधार पर रखा गया था न कि आर्थिक आधार पर और वह भी जिसकी आय 8 लाख रुपयों से कम हो और जिसके पास 1000 स्क्वायर फीट से कम रहने की जगह हो। यह मानदंड है आर्थिक रूप से पिछड़ने के। प्रश्न यह उठता है कि क्या सभी दलितों के पास यह मानदंड पूरे हैं?

दलित किसान जो आये दिन आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। उन्हें 500 रुपया महीना पेंशन का ऐलान हुआ है और जो इस देश में पांखण्ड फैलाने का काम करते हैं उन्हें 2000 रुपया महीना। ये है इनका असली चेहरा। इसके इतर विश्वविद्यालओं और रेलवे में 13 प्रतिशत रोस्टर का दलित आरक्षण विरोधी खेल जो इस समय sc, st, obc के सुरक्षित आरक्षण के साथ खेला जा रहा है, वो किसी भी तरह से नजरअंदाज करना अपने संवैधानिक अधिकारों की बलि चढ़ाने जैसा साबित होगा। ये ब्राह्मणवादी मानसिकता इस देश के वंचितों के अधिकारों को छीनकर अगड़ी जातियों की झोली में डालने की नीति अपना रही है। इसके आगे पाठ्यक्रमों को भी अपनी मानसिक सुविधा अनुसार बदल कर मनुवादी मानसिकता को रोप दिए जाने की पूरी तैयारी बनी हुई है।

(लेखक दलित लेखक संघ के अध्यक्ष व प्राख्यात मूर्तिकार हैं, संपर्क–9910522436)

डॉ. केदार कुमार मंडल

–दिल्ली

अवसरों और संसाधनों पर पहला हक किनका और क्यों?

यह सवाल वैसा ही जैसे कोई पूछे कि माँ पर पहला हक किनका? स्वाभाविक है कि माँ पर पहला हक उनके जने पुत्रों का होगा। आर्य-अनार्य की दृष्टि से देखें तो आप खुद कहेंगे कि भारत पर पहला हक अनार्य का। यानी यहाँ के मूलनिवासी का। मूलनिवासी कौन हैं यहाँ के आदिवासी, दलित, पिछड़ा और अल्पसंख्यक। सरकार आज मूलनिवासी आदिवासियों को ही उनके नेचुरल घर से बेदखल का फरमान जारी कर रही है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के गलत आदेश से करीब 60 लाख परिवार अपने घर से बेदखल होने जा रहे हैं। उनसे जमीन का पट्टा या कागज मांगा जा रहा है। वह आदिवासी जिनकी हजारों पीढियां जंगल में रह रही

हैं उनसे आज जमीन का कागजात मांगा जा रहा है। वह कहाँ से यह कागजात लाएंगे? उनको यह पता है कि मेरे पूर्वज यहाँ रह रहे थे इसलिये यह जमीन उनकी है। यद्यपि सरकार के हस्तक्षेप से यह मामला थोड़ी देर के लिये टल सा गया है लेकिन यह कभी भी फिर से उभर सकता है। क्योंकि 2 महीने में लोकसभा चुनाव है और चुनाव में आदिवासियों का वोट लेने के लिये सरकार ने यह नाटक की है। BJP सरकार पूंजीपतियों की सरकार है। तमाम तरह के चुनावी खर्च के लिए यह पार्टी पूंजीपतियों के चंदे पर निर्भर करती है। वैसे भी पिछले 15 साल के रमन सिंह की सरकार में छत्तीसगढ़ में लाखों एकड़ जमीने पूंजीपतियों को दे दी गई थी। हजारों की संख्या में आदिवासी वहाँ से बेदखल होने के लिये बाध्य हुए थे। अब यही काम पूरे देश मे किया जायेगा। सरकार को पता होना चाहिए कि जल, जंगल और जमीन पर पहला हक भारत के मूलनिवासी की है। पूरे विश्व में आज ग्रीनहाउस रेवोल्यूशन चल रहा है। कार्बन डाइऑक्साइड को कम करने की मुहिम चल रही है। पेरिस समझौता से अमेरिका ने अपना पैर बाहर खींच लिया है। अमेरिका आज विश्व में सबसे ज्यादा कार्बन डाइऑक्साइड पैदा करता है। ओबामा सरकार ने निर्णय लिया था कि इस एवज में अमेरिका बाकी के देशों को कार्बन डाइऑक्साइड कम करने में आर्थिक सहयोग करेगा। ट्रम्प सरकार के आते ही अमेरिका इस वादे से पीछे हट गया।इसके कारण अमेरिका का बहुत भद्द पीटा था लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति के कान पर जूं तक न रेंगी। यह है पूंजीपतियों की मानसिक सोच।

जहाँ तक भारत की बात है भारत की यह सरकार पूंजीपतियों के चंदे पर पलने वाली सरकार है। इसके एवज में सरकार को पूंजीपतियों को चारागाह देनी पड़ती है। वह चारागाह किसानों की जमीनें होती हैं। किसानों की जमीनें तो ली जा चुकी है। अब इनकी निगाहें आदिवासियों की जमीन पर टिक गई है। बहाना बनाया गया कि जिनके पास पट्टा या जमीन का कागजात नहीं है, उनको उस जमीन से बेदखल कर दिया जायेगा। सुप्रीम कोर्ट में यह मामला थोड़ी देर के लिये रुक तो गया है, लेकिन चुनाव के बाद कुछ भी फरमान आ सकता है। आबुआ दिसुम। अबुआ राज। यह नारा है आदिवासियों का। इसके लिये हम तबतक लड़ेंगे जबतक कि आदिवासियों को उनके जल, जंगल और जमीन से बेदखली का फरमान वापस नहीं लिया जाता। जल, जंगल और जमीन की सुरक्षा आदिवादी ही कर सकते हैं। उनको पता है कि कितनी लकड़ी जंगल से काटना है और कितना छोड़ना है? वह पर्यावरण के रक्षक हैं। कंक्रीट के महलों में रहने वाले पूंजीपति इसे नहीं जान सकते। अगर भारत में पर्यावरण को बचाये रखना है तो आदिवासियों की

उनकी जगह से बेदखली रोकनी पड़ेगी। क्योंकि संसाधनों पर पहला हक इनका है।

अब आते हैं अन्य संसाधनों पर। संसाधन वही नहीं जो जंगल में है। संसाधन वह भी है जो जंगल के अलावे भी है। इस प्रकार के संसाधन की प्रचुरता है भारत में। सवाल यह है कि इन संसाधनों पर आज किनका हक है। भारत में आर्यों के आने के पहले इस पर किनका हक था। वे कौन लोग थे। क्या वह मूलनिवासी नहीं थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता किनकी सभ्यता थी। वह उस जमाने की शहरी सभ्यता थी। किसानी और व्यापार इनका पेशा था। किसने उनको बर्बाद किया। भारत में जब कभी भी आर्थिक समानता की बात की जायेगी तो इसकी शुरुआत हड़प्पा सभ्यता और मोहनजोदड़ो की सभ्यता से शुरू करना पड़ेगा। तब हमें उस समय की आर्थिक समानता और आज की आर्थिक असमानता समझ में आयेगी। फिर हमें यह भी समझ में आयेगा कि हम क्या थे क्या हो गये और क्या होंगें अभी—आओ मिलकर विचारें सभी।

आर्य और अनार्य की लड़ाई मूलतः ब्राह्मणवाद और शूद्र की लड़ाई थी। हडप्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता मूलतः बहुजनों की सभ्यता थी। उस जमाने में भी एक शहरी सभ्यता थी जब यूरोप और अन्य देश इसके मुकाबले बहुत पीछे थी। किसान और व्यापारी सभ्यता थी। सिंधु नदी से दूर-दूर के देशों में व्यापार किया जाता था। सवाल यह है कि इसको किसने बर्बाद किया? क्यों किया? बर्बाद करने वाले कौन थे। यहीं से आर्य और अनार्य की लड़ाई शुरू होती है। यह लड़ाई संसाधनों पर कब्जे की लड़ाई थी। बहुजन डाइवर्सिटी की जब बात होगी तो इनकी शुरुआत यहीं से शुरू होगी। यहाँ से पिक्चर साफ दिखेगा।

तिलक आजादी की लड़ाई के समय अंग्रेजों को अपना वंशज मानते थे। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक सदस्य हेडगेवार भी अपने को आर्य कहते थे। सवाल यहाँ से खड़ा किया जाना चाहिए। आज के परिप्रेक्ष्य में अगर बात करें तो ब्राह्मणवाद ने सरकारी और गैर-सरकारी संसाधनों पर अधिकार जमा रखा है। यह रह-रह कर सतह पर आता रहता है। 30 नवंबर 2006 को मनमोहन सिंह की सरकार ने सच्चर कमिटी की रिपोर्ट सदन में रखा और कहा कि संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है। आज जब मोदी की सरकार है तो महामहिम राष्ट्रपति कोविद ने कहा कि संसाधनों पर पहला हक गरीबों का है। क्योंकि सच्चर कमिटी की रिपोर्ट पर बात हो रही थी इस कारण मनमोहन को सिर्फ मुसलमानों पर बात करनी थी। इसलिये उन्होंने ऐसा कहा होगा। लेकिन यह आधी सच्चाई है। दलित, पिछड़ा, आदिवासी की भी स्थिति वैसी ही है। वहीं दूसरी ओर कोविद

जी बात में घालमेल है। कांग्रेस तो इंदिरा के समय से गरीबी दूर करो के नारे लगा चुकी है फिर भी गरीबी घटी नहीं बढ़ी है। इंटरनेशनल राइट्स ग्रुप ऑक्सफैम ने 2018 में रिपोर्ट दी थी कि भारत में 73% संपत्ति पर 1% का कब्जा है। ये कब्जा करने वाले कौन हैं वही सवर्ण। खेतों पर जमींदारों का कब्जा है। ये जमींदार सवर्ण हैं।

यह तो हुई जमीनों की बात। अब आते हैं शिक्षण संस्थानों पर। आज जो 200 पॉइंट्स रोस्टर की लड़ाई हम लड़ रहे हैं वह भी सवर्णो द्वारा शिक्षण संस्थाओं पर बलात कुंडली मार के बैठ जाने के खिलाफ की लड़ाई है। 13 पॉइंट से बहुजन शिक्षकों को बहुत नुकसान होने जा रहा है। कुछ सालों से शूद्रों की बहाली शुरू हुई थी जिसके कारण मुठ्ठी भर शिक्षक सवर्णो के पवित्र मंदिर में घुसने में सफल हुए थे। 13 पॉइंट रोस्टर से वह भी खत्म होने वाला है। अब विश्वविद्यालय गुरुकुल बन जायेगा क्योंकि पढ़ाने वाले सिर्फ सवर्ण ही रहेंगे। हमलोग पिछले कई सालों से इसके लिए लड़ रहे हैं। कई संगठनों ने इस लड़ाई में शिरकत की है। अकैडमिक फोरम फॉर सोशल जस्टिस, दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी इस लड़ाई में सबसे आगे बढ़कर लड़ाई लड़ी। यह संगठन 2006 से दिल्ली विश्वविद्यालय और देश के अन्य विश्वविद्यालयों में सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ रही है। 2011 में इस संगठन ने ही एडमिशन में बहुजनों को सफलता दिलाई थी। सुप्रीम कोर्ट ने इस संगठन के पक्ष में निर्णय दिया था कि देश के जितने भी विश्वविद्यालय हैं उसमें तबतक एडमिशन चालू रहे जबतक कि बहुजन छात्रों का एक भी सीट खाली हो। इसके पहले दिल्ली विश्वविद्यालय में सिर्फ 3 या 4 कट ऑफ आते थे और बाकी बचे सीटों को जनरल में बदल दिया जाता था। यद्यपि रोस्टर पर भारी विरोध के कारण सरकार ने अध्यादेश तो लाई है लेकिन यह अंतिम समाधान नहीं है।

200 पॉइंट रोस्टर पर सरकार अगर गंभीर होती तो इस पर संसद में बिल लाती। सरकार संघ के एजेंडे पर काम कर रही है औरRSS के शब्दकोश में सामाजिक न्याय का शब्द है ही नहीं। पूरी शिक्षा व्यवस्था पर सवर्णो का कब्जा है। वे इस व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं। संक्षेप में कहा जाये तो अवसरों और संसाधनों पर पहला हक शूद्रों का होना चाहिये लेकिन आज सवर्णों का है। श्रम करने वाली जातियाँ पसीना बहा रही हैं और उस पसीने पर सवर्ण जातियाँ पल रही हैं।

लेखक दयाल सिंह कालेज दिल्ली में असिस्टैंड प्रोफेसर व प्राख्यात एक्टिविस्ट हैं।
संपर्क–9911005357

विद्या गौतम

–हरिद्वार

हमारे समाज में हज़ारों लोग और सामाजिक सगठन काम कर रहे हैं, फिर भी हम सब किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पा रहे हैं। कारण साफ है कि हम उद्देश्यहीन आंदोलन चला रहे हैं। आज 2018 में जहाँ हमारे पास हर तरह के साधन-संसाधन उपलब्ध हैं। फिर भी कोई बड़ी क्रांति नहीं कर पा रहे हैं। बाबा साहब जैसे महान व्यक्ति की विचारधारा के साथ भी यदि हम सब दिशाहीन हैं तो हमें समझना होगा कि कोई राजनैतिक की बात करता, कोई धर्म चलाने की बात करता, तो कोई आर्थिक विकास की बात करता है। जब तक हम सब बाबा साहब की उस बात पर गौर नहीं करेंगे जो उन्होंने 25 नवम्बर 1949 सविधान सभा में कहा था तब तक हम बहुजन-मुक्ति की लड़ाई का सही लक्ष्य तय नहीं कर पायेंगे। स्मरण रहे उस दिन बाबा साहेब ने संसद के केन्द्रीय कक्ष से चेतावनी देते हुए कहा था कि 26 जनवरी 1950 से हम सब राजनीति में बराबर होंगे। एक व्यक्ति और एक वोट की बराबरी तो होगी लेकिन सामाजिक और आर्थिक रूप से असमान रहेगे। यदि सामाजिक और आर्थिक विषमता का जल्दी से खात्मा नहीं होगा तो आने वाले समय में इसका खामियाजा भुगतान पड़ेगा। जिस संविधान को बड़े संघर्षो के साथ बनाया गया है विषमता से पीड़ित लोग लोकतन्त्र के उस ढांचे को उखाड़ फेंकेंगे। आज 70 साल बाद बाबा साहब की कही गयी बात सही नजर आ रही है।

- देश की 90% संम्पत्ति पर मात्र 10% लोगों का कब्जा हो गया है। यह आन्याय नहीं तो क्या है?
- सरकारी नौकरियों में हमारी हिस्सेदारी मात्र 3.95% है। आज भी मात्र 1.8% sc, st के लोग उच्च शिक्षा में हैं तथा 13 पोईंट रोस्टर लागू करके उच्च पदों पर नौकरी के सभी दरवाजे बंद कर दिया गया है।
- 2018 में दलित बेरोजगारों की तादात 8 करोड़ है।
- 54.71% दलितों के पास 1 गज भी जमीन नहीं है।
- कैसे करेंगे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गैर-बराबरी का खात्मा?
- कैसे होगा समाज का विकास?

इसलिए मात्र एक विकल्प हिस्सेदारी-भागीदारी आबादी के अनुपात में हो, जिसके लिए शक्ति के सभी स्रोतों का न्यायपूर्ण बंटवारा ही एक मात्र विकल्प है,

जिसमें मुख्य रूप से सरकार के सभी सरकारी टेंडर में हमारी हिस्सेदारी हो। मूलनिवासी दलित, आदिवासी, पिछडें अपने जीवन में परिवर्तन तब तक नहीं कर सकेंगे, जब तक कि प्रगति के सभी रास्तों में उनकी हिस्सेदारी फिक्स नहीं हो जाती। इसका यही रास्ता है कि उघोगपति, सप्लायर, डीलर, ठेकेदार, पत्रकार, इत्यादि बनने की चाह हमारे लोगो में पैदा हो और इसके लिए समाज को सघर्ष करना होगा। राजनैतिक पार्टियों को इसे चुनावी मुद्दा बनाने के लिए बहुजन समाज को सघर्ष करना होगा। इसी के साथ बाबा साहब आंबेडकर की दी गयी सभी सवैधानिक व्यवस्था को लागू करवाना होगा, जिसके के लिए 'अखिल भारतीय अम्बेडकर महासभा' का महाआंदोलन अनवरत रूप से चल रहा है। भीख नहीं, भागीदारी देश की हर ईंट में चाहिए हिस्सेदारी का आंदोलन राजस्थान सहित पंजाब, हरियाणा, उतराखण्ड, उतर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश राज्यों में चला जिसकी गूँज भारत के बहुजन समाज तक पहुँची तथा बड़ा सफल आंदोलन हुए। 8 अगस्त से लेकर 23 सितंबर 2018 तक राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र, यूपी, पंजाब, मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में चला भूख हड़ताल रंग लाया और केंद्र से 56 हज़ार करोड़ की बजट राशि प्रदान कराई गई। जो बजट की हिस्सेदारी के रूप में हर राज्य और केंद्र को मिलती SC और ST के मूलभूत सुविधाओं के विकास कार्यों के लिए। आप सभी से अपील करते हैं कि आप सभी बहुजन समाज की आर्थिक आजादी के लिए किए जा रहे सघर्षो में सभी सामाजिक संगठन तथा सामाजिक कार्यकर्ता अपना-अपना सहयोग और समर्थन साथ दें। जहाँ तक संसाधनों और अवसरों पर पहला हक का सवाल है, दुनिया का हर आदमी ही एससी/एसटी और ओबीसी को पहले अवसर दिये जाने की हिमायत करेगा।

*(लेखिका अखिल भारतीय अम्बेडकर महासभा की राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं,
संपर्क : मो. 9044096199)*

अलका जिलोया

–दिल्ली

मेरा मानना है कि भागीदारी के नियम-कायदे तय करते वक्त उन लोगों की राय को समान महत्व दिया जाना चाहिए जिन्होंने अवसरों और सुविधाओं की कमी

सर्वाधिक झेली है। समस्या का निदान सबसे बेहतर तरीके से उन लोगों से ही निकलकर आएगा। मैंने खुद एक बेहद छोटे शहर या गांवनुमा जगह से निकलकर दिल्ली यूनिवर्सिटी तक पहुंचने की यात्रा तय की है। मैंने अपने बचपन में अपनी मां के साथ स्कूल में मिड-डे मील में रोटियां बनाई हैं। वहां से निकलकर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक से स्नातक की उपाधि ली और बाद में अब दिल्ली यूनिवर्सिटी से हिंदी में एम.ए कर रही हूं। एससी समुदाय की एक छात्रा के लिए यह कोई आसान उपलब्धि नहीं है। संघर्ष के इस पूरे सफर में मैंने भी महसूस किया है कि जाति भारतीय समाज का एक बेहद निर्मम सच है। जब मैं बाबा साहेब, संविधान और आरक्षण के पक्ष में लिखती-बोलती हूं तो सवर्ण समुदाय के अधिकतर लोग आमतौर पर सहज महसूस नहीं करते। ये लोग हमेशा आरक्षण को बिना समझे उसे गलत ठहराने की कोशिश करते हैं और कई तरह के कुतर्क गढ़ते हैं जिन्हें सच मानकर कई एससी-एसटी और ओबीसी के लोग भी आरक्षण को अनुचित मानने की भूल कर बैठते हैं।

आज जब मैं यह सपना देख रही हूं कि एमए के साथ नेट, एमफिल और पीएचडी करके मैं भी कॉलेज में प्रोफेसर बन सकती हूं तब मुझे पता लग रहा है कि देश के विश्वविद्यालयों में तो एससी-एसटी और ओबीसी के उम्मीदवारों का प्रोफेसर बनना तकरीबन असंभव है। इंडियन एक्सप्रेस की एक खबर के अनुसार आज भी देश की 40 सेंट्रल यूनिवर्सिटीज में 95.2 फीसदी प्रोफेसर सवर्ण समुदाय के हैं, 92.9 फीसदी एसोसिएट प्रोफेसर सवर्ण समुदाय के हैं और 66.27 फीसदी असिसटेंट प्रोफेसर भी सवर्ण समुदाय से हैं।

हैरानी की बात तो यह है कि ओवर रेप्रेजेंटेड सवर्ण समुदाय का रेप्रेजेंटेशन और ज्यादा बढ़ाने के लिए इलाहाबाद हाईकोर्ट ने 2017 में 200 प्वाइंट रोस्टर को खत्म करके 13 प्वाइंट रोस्टर लागू करने का फैसला दे दिया था, जिसको खारिज करने के लिए बहुजन तबके को बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी और तब कहीं जाकर केंद्र सरकार इसके खिलाफ अध्यादेश लाई है। 13 पॉइंट रोस्टर जैसे फैसलों से मेरी जैसी कितनी ही लड़कियों के सपने कमजोर होते हैं, मर जाते हैं और हमें मेहनत करने के बाद भी देश में अपनी आबादी के अनुपात में अपनी उचित हिस्सेदारी नहीं मिल पाती।

देश के तमाम संसाधनों में अगर सभी समुदायों की भागीदारी उनकी आबादी के अनुपात में सुनिश्चित नहीं की गई तो लोगों का भरोसा भारतीय लोकतंत्र से

उठना शुरू हो जाएगा। डाइवर्सिटी का यह अभाव लोकतंत्र के अंत का कारण बनेगा, जैसा बाबा साहेब ने कहा भी है कि हमें बहुत जल्दी सामाजिक और आर्थिक विषमता खत्म कर लेनी होगी वरना विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकती है। आजादी के सत्तर साल बाद भी देश के अंदर सामाजिक और आर्थिक विषमता बहुत गहरे तक जड़ें जमाए बैठी है। पिछले कुछ सालों में क्रेडिट सुइसे और ऑक्सफॉम की रिपोर्टें लगातार इसी बात को दोहरा रही हैं। टॉमस पिकैटी, और जेएनयू के स्कॉलर और आजकल लंदन यूनिवर्सिटी से पीएचडी कर रहे अरविंद कुमार तथा बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के संस्थापक-अध्यक्ष एचएल दुसाध जैसे तमाम चिंतक भी इसी बात को दोहरा रहे हैं कि देश में सामाजिक-आर्थिक असमानता बनी हुई हैं और बहुत मामलों में बढ़ भी रही है।

यहां हमें एक बात को बहुत मजबूती से कहना चाहिए जिसे चिंतक अरविंद कुमार अपने लेखों और साक्षात्कारों में बार-बार कह भी रहे हैं, कि भारत में हम आरक्षण जाति के आधार पर तो लागू कर रहे हैं लेकिन भारत में परिवार नामक संस्था को इग्नोर कर दिया गया है। यही कारण है कि सवर्ण इस बात को बार-बार दोहराते रहते हैं कि आरक्षण का लाभ सिर्फ अमीरों को मिल रहा है। हम यह भलीभांति जानते हैं कि यह सच नहीं है लेकिन फिर भी हमें भारत में आरक्षण की व्यवस्था को ओर ज्यादा दुरुस्त करने के लिए परिवार की शैक्षणिक स्थिति का ख्याल रखना चाहिए। मिसाल के लिए इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए कि नौकरी में अप्लाई करने वाला क्या अपने परिवार का पहला ग्रेजुएट है, उसने मैट्रिक तक की पढ़ाई किस भाषा के माध्यम में हासिल की, उसने स्कूली शिक्षा सरकारी स्कूल में हासिल की या महंगे प्राइवेट स्कूल में। इस तरह की विषमताओं को भी आरक्षण लागू करते हुए जगह देनी होगी जिससे कि आरक्षण का लाभ सभी को न्यायपूर्वक मिल सके। कहने का मतलब ये है कि जिसने अवसरों और सुविधाओं की सर्वाधिक वंचना झेली हो, उसका संसाधनों पर पहला हक होना ही चाहिए।

अब मैं राजनेताओं और जनमत की बात करती हूं। 13 प्वाइंट रोस्टर के मामले में हम लोगों ने देखा कि इस पूरे मामले में राजनेता और राजनीतिक दल तब तक सक्रिय नहीं हुए जब तक जागरूक जनता ने इस आंदोलन को एक बड़ा आंदोलन नहीं बना दिया। और अब भी यूनिवर्सिटीज में इसे लागू कराने के लिए लगातार लड़ाई जारी रखनी होगी तभी यह लागू हो सकता है क्योंकि हमने देखा है कि कई कारणों से 200 पॉइंट रोस्टर भी विश्वविद्यालयों में डाइवर्सिटी बढ़ाने

में ज्यादा मददगार नहीं रहा है। ये अलग बात है कि 13 पॉइंट रोस्टर के जरिए तो डाइवर्सिटी की रही-सही संभावना को ही खत्म किये जाने की कोशिश हुई जिसे फिलहाल बड़े आंदोलन के बाद केंद्र सरकार अध्यादेश लाकर रोकने पर मजबूर हुई, जबकि उसकी मंशा कतई नहीं थी कि 13 पॉइंट रोस्टर खत्म हो। ऐसे में यह लड़ाई अभी जारी है और हम यह जिम्मेदारी अपने नेताओं पर नहीं छोड़ सकते हैं क्योंकि अभी हमारे नेताओं में उस स्तर की जागरूकता का अभाव है और नेताओं के अंदर जनता के सरोकारों के प्रति संवेदनशीलता भी कम ही देखने को मिल रही है। ऐसे में यह लड़ाई और इसी तरह की दूसरी लड़ाइयां पढ़े-लिखे और जागरूक लोगों को ही लड़नी होगी।

यही हमने पिछले साल एससी-एसटी एक्ट के खिलाफ संगठित आंदोलन में भी देखा था। उस समय भी हमारे नेता 2 अप्रैल के दिन तक यह तय नहीं कर पाए कि उन्हें क्या करना है? इसका एक मतलब यह भी है कि ओबीसी, एससी, एसटी समुदाय को राजनीति बदलने के लिए भी कुछ कारगर कदम उठाने होंगे। यह अच्छी बात है कि हमारा बौद्धिक तबका अब इस स्थिति में दिख रहा है कि वह राजनीतिक नेतृत्व को भी दिशा देने में कुछ मायने में सफल हुआ है।

अब बात राजनीति की करें, तो लोकसभा चुनाव 2019 में यह सब बड़े मुद्दे जनता पर असर तो निश्चित तौर पर डालेंगे लेकिन इसमें बड़ा संदेह अब तक बना हुआ है कि ये आम लोगों के वोटिंग बिहेवियर पर कोई बड़ा प्रभाव डाल पाएंगे। इसका कारण यह है कि आरएसएस और बीजेपी और इनकी दूसरी आईटी सेनाएं और मनुवादी मीडिया लगातार जनता को फर्जी राष्ट्रवाद और अन्य गैर-जरूरी मुद्दों के जरिए भ्रमित करने में लगे हैं ताकि चुनावों के मुद्दे पर असली मुद्दे उभरकर न आ पाएं। इनका प्रचारतंत्र इतना सशक्त है कि उनके ऐसे प्रयास पहले भी सफल होते रहे हैं। ऐसे हालात में जागरूक और पढ़े-लिखे वर्ग को ही सोशल मीडिया के जरिये आम लोगों को वापिस जागरूक करने की जिम्मेदारी है।

लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा हैं

बी.आर. विप्लवी

–गोरखपुर, उ.प्र.

सभ्य समाज में प्राकृतिक रूप से दुनिया के जो भी संसाधन हैं वे न केवल दुनिया के सभी मनुष्यों के लिए बल्कि वे दुनिया के सभी प्राणियों के लिए समान रूप से भोग्य हैं। इस संबंध में सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक के ज्ञात मानवीय इतिहास, मनुष्य की आदतें, मनोविज्ञान एवं रहन-सहन में बदलाव-विकास के विभिन्न सोपानों पर चढ़ते हुए उसके संघर्षों का पुनरावलोकन आवश्यक होगा। यह इसलिए भी कि आदिकालीन मानव-समाज ने, न केवल मनुष्य के साथ बल्कि जंगली जानवरों के साथ भी; संसाधनों के लिए लगातार संघर्ष किया है। यह एक जंगली समाज का लक्षण है कि वह मारकाट, युद्ध और विनाशक तरीक़े अख़्तियार करते हुए अपने बल-बूते पर अवसरों और संसाधनों का अतिक्रमण करे और अपना एकाधिकार जमा लें। ज़ाहिर है इस प्रक्रिया में शांति-व्यवस्था लगातार छिन्न-भिन्न होती रही है तथा जंगली जीवन में हिंसा तथा कोलाहल का एक नंगा नाच चलता रहा है। इन स्वेच्छाचारी बर्बर प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाकर एक शांतिपूर्ण समाज बनाने के उद्देश्य से मनुष्य आपसी सूझ-बूझ और बातचीत के ज़रिए इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के अवसरों का न्याय-पूर्ण ढंग से वितरण किया जाए ताकि सभी लोगों की ही नहीं अपितु सभी जीवधारियों की भी मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती रहें। ऐसी परिकल्पना सभ्य समाज ने, विशेषतः भारत के बौद्धिक समाज ने की ताकि आपसी कलह, युद्ध एवं मारकाट जैसी विनाशकारी घटनाओं से छुटकारा पाया जा सके। अमूमन इसी परिप्रेक्ष्य में लोगों ने बँटवारे के तहत अपने-अपने क़बीलाई सामाजिक समूहों के लिए वांछित भू-भाग लेकर उनका सीमांकन किया होगा। इस प्रकार उन भू-भागों पर उन्हीं विशेष क़बीलाई लोगों का नियंत्रण रहा तथा वे उस भू-भाग के प्राकृतिक संसाधनों का सामाजिक न्याय के तहत उपयोग-उपभोग या दोहन करने के लिए किंचित स्वतंत्र महसूस करने लगे।

जंगलीपन की विरासत–स्पष्टतया एक सीमित भू-भाग में संसाधनों के आकार-प्रकार गुणवत्ता एवं परिमाण की भी एक निश्चित सीमा होती है। किसी भी भू-भाग में वहाँ के निवासियों के आवश्यकता की सभी चीज़ें सुलभ हो जाएँ,

ऐसा प्रायः नहीं होता। इस प्रकार एक भू-भाग से दूसरे भू-भाग में आवश्यक उपभोक्ता सामग्री के आदान-प्रदान खरीद-फ़रोख्त या व्यापार जैसी व्यवस्था भी अपनानी पड़ी। इससे आगे बढ़कर भी कई समाज दूसरे समाजों से लड़ाई, झगड़े और संघर्ष के द्वारा वहाँ के संसाधनों को हथियाने की कोशिश करते रहे जिससे बार-बार अशांति फैलती रही। यही हालात क़बीलाई समाज द्वारा एक सरदार या राज-छत्र के नीचे आने तथा एक राज्य या देश के रूप में पहचाने जाने के बाद भी कमोबेश जारी रहे। इसे यूँ भी समझा जा सकता है कि आज के सभ्य समाज ने भी पूरी तरह अपनी पुरानी आदतें अब तक नहीं छोड़ी हैं जिसके कारण आज भी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हमला करता रहता है तथा उसके संसाधनों पर जबरन कब्ज़ा करता है। इस प्रकार पूरे विश्व में उथल-पुथल, युद्धोन्माद तथा अशांति का माहौल चलता रहता है। यह मनुष्य के जंगलीपन की विरासत का परिणाम है तथा उसके द्वारा सभ्यता का लबादा ओढ़ने के बाद भी उसकी पाशविक प्रवृत्तियाँ प्रायः सर उठाती रहती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि ऐसी ही लड़ाइयाँ राष्ट्रों के बीच, धर्मों के बीच, समाजों के बीच एवं व्यक्तियों के बीच कई अन्य तथाकथित मुद्दों पर भी लड़ी जाती हैं जिसके कारण सभ्यता नाम की निर्मिति को लगातार चुनौती मिलती रहती है। उदाहरण के लिए धर्म के लिए युद्ध भी अपना वर्चस्व दूसरे समाज पर स्थापित करने के लिए ही होता है ताकि उस समाज के अधिकार क्षेत्र में स्थित संसाधनों और अवसरों को अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार संचालित किया जा सके। स्पष्ट है कि सभी तरह के वर्चस्ववादी युद्ध इसी एक बात के लिए लड़े जाते हैं ताकि जीतने वाला समाज या राष्ट्र हारने वाले समाज या राष्ट्र के संसाधनों को अपने उपभोग के लिए इस्तेमाल कर सके। यह एक चिंताजनक स्थिति है जो बढ़ते-बढ़ते विश्वयुद्ध का रूप लेकर अधिक भयावह एवं विस्फोटक भी हो सकती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सभ्य कहलाने वाला समाज आपसी बातचीत के ज़रिए, एक दूसरे की आवश्यकताओं को समझते हुए, अपने लिए कुछ अनुशासनिक, नैतिक मानदंड स्थापित करे जिससे धरती के संसाधनों पर हक़ प्राप्त करने के लिए उनका भी न्यायपूर्ण बँटवारा हो सके। इस वृहत्तर और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, ऐतिहासिक तथ्यों के मद्देनज़र हम भारतीय समाज में प्रस्तावित अवसरों की समानता तथा संसाधनों की सुलभता वाले अधिकार के बारे में एक सुनिश्चित, सुपरिभाषित एवं न्यायपूर्ण सम्मति बना सकें। यही शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में हमारे सभ्य कहलाने के सभी दावे खोखले साबित हो रहे हैं।

संसाधनों पर अधिकार का वर्तमान स्वरूप : आइए विचार करते हैं कि भारत के वर्तमान समय में अवसरों की उपलब्धता तथा संसाधनों का बँटवारा किस प्रकार का है? क्या यह न्यायपूर्ण बँटवारा है? क्या इससे शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ावा मिलता है? यह भी कि भूतकाल में किस प्रकार का बंटवारा हुआ तथा उसके ऐतिहासिक परिणाम क्या रहे? उन ऐतिहासिक नतीज़ों के एवज़ में आज की आवश्यकताएं क्या हैं? ऐसे में संसाधनों तथा अवसरों पर पहला हक़ किसका होना चाहिए? इस का बँटवारा किस प्रकार किया जाए कि सभ्य कहलाने वाले समाज में स्वाभाविक शांति लंबे समय तक क़ायम रह सके?

इन प्रश्नों पर विचार करते हुए हम भारत के विषय में निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होते हैं—

- यह कि ऐतिहासिक रूप से भारत में मनुष्य-मनुष्य के बीच भी समानता के व्यवहार की प्रायः मनाही रही है जिसका आधार धार्मिक वर्चस्व से व्युत्पन्न (derived) किया गया है। ऐसे में समाज को चार सीढ़ीदार ख़ानों में बाँटकर उनके संसाधनों तथा अवसरों के प्राप्त करने के वरीयता क्रम भी सीढ़ी के क्रमानुसार ही सुनिश्चित किए गए हैं।
- सबसे ऊपर बैठा है ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग जिसे संसाधनों और अवसरों पर खुली छूट है तथा उसे वहाँ तक पहुंचने के लिए श्रम करने की भी आवश्यकता नहीं है बल्कि बाकी बचे तीन वर्ण उसकी आवश्यकता तथा ऐशो-आराम के सभी संसाधन उसे स्वयं मुहैया कराने के लिए पूर्णतः उत्तरदायी हैं, चाहे इसके लिए उन्हें अपने जीवन के हिस्से से भी काट कर उन्हें क्यों न देना पड़े।
- इसी प्रकार दूसरा वर्ण- क्षत्रिय वर्ण को राज्य-संपत्ति-शासन का पूरा अधिकार है किन्तु वह ब्राह्मण को किसी भी तरह अतिक्रमित नहीं कर सकता। बाक़ी बचे हुए निचले दो वर्ण उसकी सुख सुविधा का ही नहीं किन्तु अपने ऊपर के दोनों वर्ण के लोगों की सुख-सुविधा का भी ध्यान रखते हुए उनके आज्ञाकारी सेवक बने रहने को बाध्य हैं।
- इसी प्रकार तीसरा वर्ण जो वैश्य कहलाता है को संपत्ति तथा व्यापार के सभी संसाधनों पर अधिकार हैं तथा उसकी पूँजी से ही धर्म को बाक़ी जनता पर आरोपित करने का काम होता है ताकि बाक़ी लोग चुपचाप राजा तथा पुरोहित की सेवा में लगे रहें और किसी प्रकार का कोई विद्रोह न हो।

- इसी क्रम में चौथा वर्ण, जो शूद्र वर्ण है, को अपने ऊपर के तीनों वर्णों की हर प्रकार से सेवा करनी है। उसे संपत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं है। वह ब्राह्मण पुरोहित, क्षत्रिय राजा तथा धनपति वैश्य के रहमो-करम पर ज़िंदा रहने को बाध्य है। दूसरे शब्दों में भारत के एक वर्ग को किसी प्रकार के लाभकारी अवसर तथा संसाधन से लगातार पिछले तीन हजार वर्षों से वंचित रखा गया है।
- इस प्रकार ऐतिहासिक सच है कि कपटपूर्ण ढंग से सभ्यता के नाम पर जंगली स्वेच्छाचार को ज़िन्दा रखा गया है किन्तु आक्रान्त समूह को एक पक्षीय सभ्यता- शान्ति के पाठ से बहलाकर तथा उनके अपने अस्तित्व, मान-सम्मान के प्रश्नों से बहकाकर। मज़े की बात यह है कि शूद्रवर्ण को अपने ऊपर के तीन वर्णों की हर तरह से सेवा करना ही धर्म बताया गया है जो उसका कर्तव्य है। उसके अधिकार कुछ भी नहीं हैं। कृषि उत्पादन वह करता है किन्तु खेत का मालिक ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य है। इस प्रकार धरती के हर प्राकृतिक संसाधन पर से उनका हक़ ख़ारिज है। बाग, बगीचे, जंगल, पहाड़, नदी, पशु-धन, खेती तथा उत्पादन के सभी स्रोत पर वह केवल मज़दूर, कारीगर, उत्पादक मात्र है। मालिक और नियंता कुछ मुट्ठीभर लोग हैं।
- हिन्दू वर्ण-व्यवस्था से अलग भी एक वर्ग है जो निर्वर्ण है तथा हिन्दू समाज के चार वर्णों से बाहर तथा बहिष्कृत है। इस निर्वर्ण वर्ग को अवसरों एवं संसाधनों पर कोई अधिकार नहीं है तथा उसे मनुष्य की श्रेणी में भी नहीं माना जाता, फलतः उसे सार्वजनिक स्थलों पर अस्पृश्य बताकर अपमानित और तिरस्कृत किया जाता है। इस वर्ग का जीवन जानवरों से भी बदतर है।
- इस प्रकार सम्पत्ति तथा शक्ति के स्रोतों पर चौथे वर्ण तथा इस वर्ण-व्यवस्था से बाहर वाले निर्वर्ण अन्त्यज लोगों का कोई अधिकार नहीं है। सारतः इस व्यवस्था ने सभी संसाधनों पर उच्च वर्ण का एकाधिकार विधि-सम्मत, धर्म-सम्मत और समाज-सम्मत बना रखा है जिसके कारण एक बहुत बड़ा वर्ग हज़ारों वर्षों से दीन-हीन, साधन-विहीन बना हुआ-श्रम की चक्की में पिसकर भी हर सुख-सुविधा से वंचित है। इसे किसी भी प्रकार से न्यायपूर्ण बँटवारा नहीं कहा जा सकता है।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के प्रश्न : अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसा करने

के कारण किसी प्रकार का विद्रोह या अशांति क्यों नहीं पैदा हुई? और यदि नहीं पैदा हुई तो फिर इस व्यवस्था में बुराई क्या है? यदि ऐसी व्यवस्था के रहते हुए भी शांति स्थापित रह सकती है तो फिर उसकी आलोचना क्यों की जानी चाहिए? इसका सीधा सा उत्तर यह बनता है कि यह शांति केवल दिखावे की है। क्योंकि जो समाज अवसरों तथा संसाधनों से बलपूर्वक वंचित रखा गया है उसके मन में, स्वाभाविक है कि एक आक्रोश तथा विद्रोह की भावना किसी न किसी रूप में प्रच्छन्न किन्तु ज़िन्दा रहेगी ही। अवसर पाते ही यह समाज को छिन्न-भिन्न कर देने की कूव्वत रखती है। कई अवसरों पर यह नज़रअंदाज होती ज्वाला फूटी भी है (2 अप्रैल, 2018 में वंचित वर्गों द्वारा दुनिया का सबसे बड़ा शान्ति प्रदर्शन जो एससी/एसटी एक्ट को डायलूट (dilute) करने के विरोध में सफलीभूत किया गया)। कुछ लोगों के हक़ को छीनकर उन्हें सभी अवसरों तथा संसाधनों से वंचित कर, दीन-हीन बना कर, उसे मनुष्य से भी नीचे के दर्ज़े में रखते हुए जानवरों की तरह ज़िंदा रहने को बाध्य करने को यदि कोई समाज शांति की गारंटी मानता है तो कदाचित यह तथाकथित परिभाषित सभ्यता के लिए एक धोखा है। इसीलिए ऐसी व्यवस्था की निंदा की जाती रही है। आज की स्थिति में जबकि सभ्यता ने वैज्ञानिक रुख अख्तियार करते हुए बेहतर जीवन प्राप्त करने के संसाधन जुटाये हैं, यदि एक बड़ी आबादी जानवरों की जिंदगी जीने को बाध्य है तो इसे कदाचित सभ्यता नहीं कहा जा सकता। यदि इस बहुसंख्य जनता को अवसरों और संसाधनों में प्राथमिकता दी जाए तो ही उन्हें मनुष्यता के पायदान तक लाया जा सकेगा। उनके मान-सम्मान को बहाल करने के लिए हर तरह के अधिकार में उन्हें तरजीह देना आवश्यक है ताकि उनके अंदर के विद्रोह तथा निराशा को समाप्त करके एक शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व वाला समाज बनाया जा सके।

प्राथमिकता या भेद-भाव : यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि यदि तथाकथित तीनों उच्च वर्णों को अवसरों तथा संसाधनों में नीचे रखकर प्राथमिकता चौथे वर्ण एवं निर्वर्ण अन्त्यज बहुजन लोगों को दी जाती है तो क्या यह भी न्याय-पूर्ण बँटवारा कहा जाएगा? इसका उत्तर होगा हाँ। क्योंकि जो वर्ग भारी विरोधाभास तथा भेदभाव के कारण पीढ़ियों तक अपने मान-सम्मान, मनोबल, धनबल तथा सभी प्रकार की लौकिक शक्तियों में क्षय एवं हीनता को प्राप्त हुआ है, उसकी भरपाई करने के लिए उसे हर अवसर तथा संसाधन में प्राथमिकता देनी ही पड़ेगी अन्यथा जो विभेदजन्य वैमनस्यता पैदा हुई है, उसे बरक़रार रखते हुए कभी भी समानतापूर्ण तथा शांतिपूर्ण समाज का सपना पूरा नहीं हो सकता। यदि भारत में शांतिपूर्ण सह अस्तित्व बनाकर

पूरे देश को विकास के रास्ते पर अग्रसर करना है तो यहाँ के लोगों में एकता तथा राष्ट्रीय स्तर के लक्ष्यों के प्रति एकजुटता आवश्यक होगी जोकि बँटे हुए समाज में कतई संभव नहीं है। इसलिए भी राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक हो जाता है कि कि हम सभी अवसरों तथा संसाधनों में उन वर्गों को प्राथमिकता दें जो हमारे अपने ही लोगों के भेद-भाव के कारण पीछे रह गए हैं, अन्यथा जंगली सभ्यता के लौट आने के सभी अनुकूल वातावरण उपलब्ध हैं। ऐसे में बर्बर जंगलीपन के फूट पड़ने का अंदेशा हमेशा बना हुआ रहेगा जो मनुष्यता के लिए तथा सभ्यता के लिए कभी भी फलदाई नहीं हो सकता है।

विडम्बना यह है कि वंचित वर्गों को बारी से बाहर (out of turn) वरीयता देने की बात तो बहुत दूर की है, उन्हें संवैधानिक आज़ादी के सत्तर सालों में भी हर तरह की सरकारी-ग़ैरसरकारी संस्थाओं तथा सत्ता के केन्द्रों में आज तक समानुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है। जातीय-धार्मिक भेद-भाव एवं उत्पीड़न से बचाव (Safe Guard) के लिए विशेष प्रावधान को धता बताकर उनके संवैधानिक अधिकार भी नहीं दिए गये। इसके तहत आरक्षण द्वारा जो मामूली प्रतिनिधित्व मिलना शुरू ही हुआ था कि वर्णवादी ताक़तों के कलेजे पर साँप लोटने लगा तथा इसे समाप्त करने के लिए उन्होंने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया है। एक कपटपूर्ण योजना के तहत सवर्ण गरीबों को आरक्षण की घोषणा की गयी है जबकि आरक्षण गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम नहीं है। यह शासन-प्रशासन में सबकी हिस्सेदारी का प्रावधान है जिसके उलट सवर्णों की संख्या हर संस्थान में 80 से 85 प्रतिशत तक है। ग़रीबी उन्मूलन करना है तो संसाधनों का जनसंख्यानुपात में बँटवारा एक ज़रूरी क़दम है जिसकी अपेक्षा सरकारों से की जाती है। खेतीवाली जमीनों के समान वितरण, खनिज संपदा में हिस्सेदारी, वन-संपदा, जल संसाधनों आदि के न्यायपूर्ण आवंटन से आँखें चुराती सरकारें लगातार उच्चवर्णीय तबकों का पिष्ट-पोषण करती रही हैं। इसलिए भी आज यह समय आ गया है कि अवसरों एवं संसाधनों पर प्राथमिक हक़ वंचित लोगों को तत्काल मुहैया कराया जाय।

अतः हम यह कह सकते हैं कि भारतीय संदर्भ में हमें वंचित-शोषित वर्गों को ऐसे सभी संसाधनों तथा अवसरों पर तत्काल हक़ दिलाकर आज़ादी से लैस करना होगा जो उन्हें त्वरित गति से विकास की अग्रिम सीढ़ियों तक ले जाए। यह भारत के लिए तो ज़रूरी है ही, विश्व-समुदाय के शान्ति-प्रिय लोगों के लिए और भी ज़्यादा ज़रूरी है।

(लेखक चर्चित गजलकार हैं, संपर्क : 9794840901)

डॉ. पुष्पा संखवार

–लखनऊ, (उ.प्र.)

आज की तारीख में जिस बड़े पैमाने पर आर्थिक और सामाजिक विषमता फैली है, उसे देखते हुए अवसरों और संसाधनों पर पहला हक़ किनका और क्यों, इससे बड़ा सवाल कोई हो ही नहीं सकता। इस सवाल को उठाने के लिए आपको साधुवाद। आज देश में आर्थिक विषमता को लेकर जिस तरह अर्थशास्त्री और बुद्धिजीवी, खासकर आप बहुजन बुद्धिजीवी चिंता जाहिर कर रहे हैं, वैसा पहले कभी नहीं हुआ। इस भयंकर विषमता को लेकर बहुजन बुद्धिजीवियों का चिंतित होना स्वभाविक है, क्योंकि वे उस बाबा साहेब के अनुयायी हैं, जिन्होंने इसे लेकर न सिर्फ सबसे अधिक चिंता व्यक्त किया, बल्कि इससे निजात पाने के लिए देश को चेतावनी तक दिया था।

संविधान का बार-बार हवाला देने वाले तमाम लोगों को पता है कि बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने देश को संविधान सौपने के पहले चेतावनी देते हुए कहा था कि हमें जितना जल्दी हो सके आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता डेमोक्रेसी के उस ढांचे को उड़ा सकती है, जिसे संविधान निर्माण करने वाली सभा ने इतनी मेहनत से बनाया है। लेकिन भारी दुःख के साथ कहना पड़ता है कि संविधान को लागू करने वाले शासक दलों ने अपनी जातिवादी सोच के कारण गैर-बराबरी के खात्मे में कोई रूचि ही नहीं लिया। अगर लिए होते तो सबसे ज्यादा लाभ उन बहुजनों को मिलता, जिन्हें हजारों साल से धन-धरती और शिक्षा तथा मुख्यधारा से अलग-थलग करके रखा गया था। उनके द्वारा बाबा साहेब की चेतावनी को पूरी तरह इग्नोअर किये जाने के कारण कारण देश के सैकड़ों जिले नक्सलवाद की चपेट में आ गए। नक्सलवाद/माओवाद बढ़ने के कारण कल तक सभी सरकारें इसे देश की सबसे बड़ी समस्या बताती रहीं। आश्चर्यजनक रूप से मौजूदा प्रधानमंत्री के कार्यकाल में इसे लेकर कोई खास चिंता जाहिर नहीं की जा रही है। बहरहाल मोदी सरकार भले ही इस पर चुप्पी साधे लेकिन गैर-बराबरी के खतरे से आगाह करने वालों में खूब कमी नहीं आई है। यही कारण पिछले कुछ वर्षों में ऑक्सफाम और दूसरी

सर्वे एजेंसियों की रपटों में जब भी गंभीर गैर-बराबरी की तस्वीर उभरी, देश के अख़बारों और बुद्धिजीवियों ने अक्सर इन शब्दों में अपनी चिंता जाहिर किया– 'गैर-बराबरी अक्सर समाज में उथल-पुथल का कारण बनती है। सरकार और सियासी पार्टियों को इस समस्या को गंभीरता से लेना चाहिए। संसाधनों और धन का न्यायपूर्ण बंटवारा कैसे हो, यह सवाल अब प्राथमिक महत्त्व का हो गया है।'

भारी दुःख की बात है कि मोदी सरकार ने इन चेतावनियों को कोई तरजीह नहीं दिया और वह ऐसे-ऐसे कदम उठाती रही जिससे विषमता की बीमारी और गंभीर रूप अख्तियार करती गयी। पिछले चार सालों से सरकार का रंग-ढंग देखकर बार-बार ऐसा लगा है कि वह बहुजनों के साथ दुश्मनों जैसा ट्रीट कर रही है। यह सरकार आरक्षित वर्गों के प्रति इतनी निर्मम रही है कि एक ओर जहाँ यह निजीकरण, विनिवेशीकरण इत्यादि के जरिये सरकारी नौकरियों के खात्मे में पूरी तरह मुस्तैद रही, वहीं दूसरी ओर बची-खुची सरकारी नौकरियों की वैकेन्सी निकालने में तरह-तरह का षड्यंत्र करती रही। खुद इस सरकार ने मार्च 2016 में माना कि 2013 से 2015 के बीच केंद्र सरकार की नौकरियों में करीब 89 प्रतिशत गिरावट आई है। तब राज्य मंत्री जितेन्द्र कुमार ने संसद में बताया था कि 2013 में 1,51,841 सीधी नौकरियाँ दी गयीं थी, जो 2014 में घटकर 1,26,261 रह गयीं और 2015 में केवल 15,877 लोगों की सीधी भर्ती की गयी। इसका मतलब यह हुआ कि 2013 से 2015 के बीच आरक्षित वर्ग की नौकरियों में 90 प्रतिशत की गिरावट आई। एससी/एसटी और पिछड़े वर्गों के लिए निर्धारित आरक्षण के जरिये 2013 में 92,928 लोगों को नौकरी मिली थी। 2014 में यह तादाद 72,077 थी जो 2015 में महज 8,436 तक सिमट कर रह गयी। अब भाजपा के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने 5 अगस्त, 2018 को स्पष्ट घोषणा कर दिया है कि सरकारी नौकरियां नहीं हैं और जब नौकरियां ही नहीं हैं तो आरक्षण का भी कोई अर्थ नहीं है!।

सबको पता है बहुजन समाज मे शामिल जातियां, खासकर दलित आरक्षण पर निर्भर हैं। बाबा साहेब द्वारा संविधान में सुनिश्चित कराये गए आरक्षण के सौजन्य से ही हम जैसे ढेरों लोग राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़े और मस्तक ऊँचा करके जीने का अवसर पाए। यह आरक्षण ही धन-धरती-शिक्षा और मुख्य समाज से दूर धकेले गए दलितों के आगे बढ़ने का एकमात्र प्रभावशाली माध्यम रहा है, जिसे मोदी सरकार ने कागजों की शोभा बना दिया है और दलित गुलामों की स्थिति में पहुँचते जा रहे हैं। ऐसा लगता है इस सरकार का सारा ध्यान- ज्ञान उन सवर्णों के हाथ

सबकुछ सौंप देने पर है, जो हजारों साल से तमाम सुख-सुविधाओं का भोग करते रहे हैं और जिनका आज मीडिया-फिल्म-टीवी, उद्योग-व्यापार और नॉलेज सेक्टर में 80-90 प्रतिशत कब्ज़ा है। सवर्णों की इतनी चिंता के कारण ही मोदी सरकार के आखिरी दिनों में सवर्ण आरक्षण के कुछ ही दिन बाद यूनिवर्सिटीयों में 13 प्वाइंट रोस्टर वाला विभागवार आरक्षण लागू करने का फैसला ले लिया गया।

13 प्वाइंट रोस्टर जो अभी सिर्फ उच्च शिक्षा में लागू हुआ है, कल तमाम क्षेत्रों में लागू हो सकता है,ऐसा तमाम जानकारों का मानना है। अगर ऐसा होता है तब जिन वर्गों का यहाँ हजारों साल से शक्ति के स्रोतों पर बेहिसाब कब्ज़ा है, वह और मजबूत हो जाएगा, इससे आर्थिक और सामाजिक विषमता की समस्या उस स्टेज पर पहुँच जाएगी, जहाँ से उथल-पुथल मंचने से लेकर लोकतंत्र के ढाँचे के विस्फोटित होने की सम्भावना एकदम गारंटी के साथ पैदा हो जाएगी। इसलिए आज अवसरों और संसाधनों का न्यायपूर्ण बंटवारा प्राथमिक महत्त्व का विषय बन गया है। इस स्थिति से पार पाने का एक ही रास्ता है कि संसाधनों और अवसरों के बंटवारे में अवसर पहले एसटी, एससी और पिछड़े वर्ग को मिले : बाद में सवर्णों को। इसके लिए 13 प्वाइंट रोस्टर को उलटने की दिशा में देश को आगे बढ़ना चाहिए।

(लेखिका एक चिकित्सा विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं।)

डॉ. विजय कुमार त्रिशरण

गढ़वा, झारखण्ड

गैर-बराबरी पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के कारण भारतीय समाज ऊपर से नीचे दो भागों में बंटा हुआ है। ऊपर वाला वर्ग शासक वर्ग है जिसकी संख्या मात्र 15 प्रतिशत है। यह वर्ण-व्यवस्था के कारण खुशहाल (Beneficiary of the system)[1] है। नीचे वाला वर्ग शोषितों का है जिनकी संख्या 85 प्रतिशत है। यह वर्ण-व्यवस्था के कारण फटेहाल (Victim of the system)[2] है। ऐसी व्यवस्था का निर्माण समाज विभाजन रेखा के ऊपर वाले वर्ग द्वारा ही किया गया है। फटेहाल वर्ग के दुःख निवारण तथा समताप्रधान समाज निर्माण के लिये इस व्यवस्था को

उलटना बहुत जरूरी है। ऐसा होना **भागीदारी** के सिद्धांत से ही संभव है। इसके लिये पीड़ित वर्ग को ही त्यागपूर्ण संघर्ष करना होगा। इसी चिंतन-मंथन के परिणमस्वरूप एक नारे का सृजन हुआ, **'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी।'** इस नारे में बाबासाहेब के सपनों के आदर्श समाज का त्रयी सिद्धांत, **समता, स्वंतत्रता और बंधुत्व** का भाव समाहित है, जिसके कारण यह विश्व का सबसे उत्कृष्ट एवं क्रांतिकारी नारा बन गया है। धन के असमान वितरण से अधिसंख्यक जनता दुखी रहती है और देश का विकास अवरूद्ध होता है। उपर्युक्त नारे में आर्थिक-सामाजिक गैर-बराबरी समाप्त करने के प्रचुर तत्व हैं। देश के शासन-प्रशासन, सत्ता-संपत्ति, धन-धरती तथा विकास के सभी क्षेत्रों में भारतीय समाज के सभी वर्गों को उनकी जनसंख्यानुपात के अनुसार अगर भागीदारी सुनिश्चित कर दी जाए तो सारी समस्याओं का समाधान तो होगा ही, भारत विश्व के विकसित और शक्तिसम्पन्न देशों की श्रृंखला में सबसे आगे होगा। उक्त विश्व-विख्यात नारे का यही सार है।

उत्पादक वर्ग अर्थात बहुजन वर्ग हजारों साल से शोषित और शासित रहा है। वर्तमान में इनकी जनसंख्या 85% से 90% है। इसमें 52% पिछड़ा वर्ग, 24.5% अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य, 10.5% मुसलमान हैं। इसके अलावें अन्य अल्पसंख्यक वर्ग हैं। परन्तु देश के विभिन्न संस्थानों और उपक्रमों में आज भी इनकी भागीदारी नगण्य है। देश के मुसलमान समुदाय की भी स्थिति उपर्युक्त वर्गों जैसा ही है। सच्चर कमिटी की रिर्पोट (24 नवम्बर 2006) तो मुसलमानों की स्थिति स्पष्ट करते हुये यहाँ तक कहा गया कि पिछले साठ सालों में इनकी हालात दलितों से भी ख़राब हुई है। दूसरे शब्दों में देश के बहुसंख्य आबादी की भागीदारी देश में विकास के विभिन्न क्षेत्रों में उनके संख्या के अनुपात में नहीं के बराबर है। शेष 15% की आबादी में 3.5% ब्राह्मण, 5.5% क्षत्रिय और 6% वैश्य (व्यापारी वर्ग) शामिल हैं। इनका प्रतिनिधित्व इनकी आबादी से कई गुना ज्यादा है। यह 15 प्रतिशत वाला आबादी ही देश का शासक वर्ग है। ये ही देश के अगुआ और भाग्य विधाता बने बैठे हैं। यही वर्ग हजारों सालों से भारत में शोषक और शासक की भूमिका में है। इस भूमिका में ये स्वाभाविक विलक्षणता के कारण नहीं आए हैं, बल्कि हजारों साल तक बहुजनों के विरूद्ध जबरन थोपे गए उन पर शास्त्रीय निर्योग्यताओं और अपने लिए सारे श्रेष्ठ पद और अधिकार सुरक्षित कर लेने के कारण हैं। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत पेशों की अपरिवर्तनशीलता के कारण बहुजन सदियों तक नरपशु बने रहे और भारत हजारों सालों तक गुलामी के जंजीर में सिसकता रहा। सत्तर सालों में प्राप्त सीमित संवैधानिक अधिकारों के जरिए बहुजन विरल

ही सही, किन्तु हर क्षेत्र में अपनी क्षमता और प्रतिभा का लोहा मनवा चुके हैं। यदि इन पर शास्त्रीय प्रतिबंध थोपे नहीं गए होते तो आज भारत दुनियां में सर्वशक्तिमान देशों की श्रेणी में शुमार होता। अवसरों से वंचित बहुजन वर्ग में असीमित प्रतिभा है जो संविधानोत्तर भारत में इस वर्ग के सभी क्षेत्रों में सभी जगह प्रदर्शन से सिद्ध होता है। इसलिए स्पष्ट रूप से और डंके की चोट पर यह कहा जा सकता है कि देश के साधन-संसाधनों और अवसरों पर बहुजन वर्ग का हक़ होना चाहिए; कारण उपरोक्त वर्णित तथ्यों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

अगर देश के धन, धरती और सत्ता का वितरण सभी वर्गो में उनकी जनसंख्या के अनुपात में नहीं हुआ तो भारत कभी भी एक विकसित राष्ट्र नहीं बन जायगा। **भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिये विभिन्न सामाजिक वर्गो की भागीदारी उनकी जनसंख्या के अनुपात में देश के विभिन्न क्षेत्रों में सुनिश्चित होनी चाहिए। अर्थात सरकारी, गैर-सरकारी नौकरियों, उद्योग व्यापार, सप्लाई, कॉन्ट्रेक्ट, फिल्म, मीडिया, खेल, कला इत्यादि में विभिन्न वर्गो की उपस्थिति उनके प्रतिशत जनसंख्या के अनुसार हो।** इससे देश द्रुत गति से तरक्की करेगा। भारत में **डाइवर्सिटी** (Diversity) और अमेरिका में यह अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम के नाम से जाना जाता है। **अमेरिका की संधीय सरकार ने यह अनिवार्य कर दिया कि 50 या इससे अधिक कर्मचारी वाली संस्था प्रतिवर्ष फार्म भर कर यह सूचना देगी कि कम्पनी के कर्मचारियों का नस्लीय प्रतिशत क्या हैं**? वहाँ एक विभाग का गठन किया गया है, जहाँ पीड़ित सदस्य यह मुकद्मा दायर कर सकता है कि अमुक कम्पनी ने नस्ल के आधार पर भेदभाव किया। अमेरिका में **'सेक्स डिस्क्रीमेशन ऐक्ट-1975'** तथा **'रेस रिलेशेन्स ऐक्ट-1976'** भी पारित किये गये हैं जो जाति, रंग और लिंग के बिना विचार किये नौकरियों में भागीदारी सुनिश्चित कराता है। अमेरिका में अश्वेतों और अन्य वंचित समूहों के लिये कोई कोटा नहीं है जिसके तहत उनके लिये नौकरियाँ आरक्षित की जाय। परन्तु वहां एक ऐसी आम सहमति है कि सरकारी और निजी क्षेत्रों में 27 प्रतिशत अश्वेत एवं अन्य समूहों की नियुक्ति करेंगे।

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर ने तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में दलितोत्थान के लिये आरक्षण की जो आपातकालीन व्यवस्था किया था वह उस समय के लिये पर्याप्त था, परन्तु आज इक्कीसवीं सदी में, जहाँ बहुत कुछ बदल चुका है, विश्व से प्रत्येक क्षेत्र में मुकाबला करने के लिये बहुजनों को सबसे ज्यादा ताकतवर होने की जरूरत है और इसके लिये वर्तमान आरक्षण नीति अपर्याप्त है। प्रश्न उठता

है कि आज के संदर्भ में क्या वर्तमान आरक्षण नीति काफी है ? क्या यह 85 प्रतिशत बहुजनों को सभी क्षेत्रों में बराबरी का हक प्रदान करती है? क्या इनकी सभी बुनियादी जरूरतें पूरी होती है? क्या दलित-बहुजन इस देश की अर्थव्यवस्था की धुरी बन सकते हैं? यदि हम आरक्षण को इन प्रश्नों की कसौटी पर परखते और वर्तमान आरक्षण नीति का विश्लेशण करते हैं तो उत्तर नकारात्मक मिलता है जो निम्नलिखित तथ्यों से प्रमाणित होता है:-

1. आरक्षण सिर्फ शिक्षा, राजनीति और नौकरी में ही मिलता है। अन्य क्षेत्रों जैसे निजी क्षेत्र, न्यायपालिका, राज्यसभा, विधान परिषद, मीडिया, सप्लायर, बिल्डर, कॉन्ट्रेक्टर, विज्ञापन, उद्योग-व्यापार आदि में बहुजनों की भागीदारी नगण्य है।
2. आरक्षण कुछ लोगों को ही जीविका का आधार मुहैया कराता है। अधिसंख्यक लोग बेरोजगार और विपन्न अवस्था में रहते हैं।
3. प्राप्त आरक्षण की सभी सीटें नहीं भरी जाती है। संविधान लागू होने के 70 वर्षों के बावजूद एससी, एसटी कोटा के 22.5 प्रतिशत में से सिर्फ 5 प्रतिशत आरक्षण का ही लाभ इन वर्गों को मिल पाया है तथा ओबीसी के 27 प्रतिशत कोटे में से मात्र 4 प्रतिशत ही सीटें भरी जा सकी हैं। इससे साफ जाहिर है कि शासक वर्ग आरक्षण नीति के सफल कार्यान्यिवन के प्रति उदासीन है।
4. आरक्षण केवल सरकारी क्षेत्रों में है; जबकि सरकारी नौकरियों की संख्या तेजी से घट रही है और गैर-सरकारी (निजी क्षेत्रों) नौकरियों की लगातार संख्या बढ़ रही है। इससे आरक्षण की प्रासंगिकता समाप्त हो रही है क्योंकि निजी क्षेत्रों में आरक्षण नहीं है। यहाँ पर **'जहाँ दाँत है वहाँ चना नहीं और जहाँ चना है वहाँ दाँत नहीं'** वाली कहावत चरितार्थ होती है।
5. उदारीकरण (Liberilization), निजीकरण (Privatization), भूमण्डलीकरण (Globlization) और स्पेशल इकोनोमिक जोन (SEZ) के कारण गैर-सरकारी क्षेत्रों की नौकरियाँ बढ़ रही है जहाँ आरक्षण की व्यवस्था नहीं है। **एलपीजी और सेज बहुजनों के ताबूत में कील के समान है।** इससे मूलनिवासियों के खेत-खलिहान और जंगल समाप्त हो रहें है तथा आर्थिक संकट के साथ-साथ मूलनिवासी कला-संस्कृति के भी लुप्त होने का ख़तरा मँडरा रहा है।

6. सरकार द्वारा संविधान के **अनुच्छेद-16**(4) के विरूद्ध 9 जनवरी, 2019 को सवर्ण आरक्षण लागू करना।
7. 22 जनवरी 2019 को विश्वविद्यालयों में विभागवार आरक्षण लागू करने से बहुजन विद्यार्थियों का विश्वविद्यालयों में शिक्षक बनने का मार्ग दुरूह हो गया है।
8. **13 प्वाइंट रोस्टर** तो विश्वविद्यालीय आरक्षण को पूरी तरह से तबाह करने की नीयत से ही लागू किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मौजूदा आरक्षण नीति आज के संदर्भ में अपर्याप्त और अप्रसांगिक हो चुकी है। और तो और **बिन्दू संख्या 6, 7 और 8 तो बहुजन आरक्षण को अति-दुर्लभ बना दिया है**। ऐसे में आरक्षण के स्थान पर कोई अन्य विकल्प की आवश्यकता है जो बहुजनों को सर्वांगीण विकास की ऊँची उड़ान भरने के लिये अवसर प्रदान करे : देश को सशक्त, समृद्ध और विकसित बनाये तथा आर्थिक गैर-बराबरी के दूर कर सामाजिक विषमता को पाटे। एक विकल्प है, और वह है **'डाइवर्सिटी'।** डाइवर्सिटी बहुजनों की आवश्यकता है, वर्तमान में उनके चतुर्दिक विकास का प्रमुख एजेन्डा है। डाइवर्सिटी सिद्धांत के अनुसार भारतीय समाज संरचना के अनुरूप भारत की तस्वीर भारत के प्रत्येक विभागों, संस्थानों तथा संगठनों में झलकना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि किसी हॉस्पिटल में 20 डॉक्टर हैं तो विभिन्न वर्गों के जनसंख्यानुपात के आधार पर पिछड़े वर्ग के डॉक्टरों की संख्या 10 होना चाहिए, एससी, एसटी के 5, सवर्णों के 3 और धर्मपरिवर्तित समुदाय के 2 डॉक्टर होने चाहिए। इसी प्रकार का समानुपातिक प्रतिनिधित्व विकास के प्रत्येक क्षेत्रों में झलकना चाहिए तभी देश में आर्थिक साम्य पैदा होगा। ऐसा होने पर भारत की असली तस्वीर प्रत्येक जगह दिखेगी जैसा कि अमेरिका में वहाँ के प्रत्येक विभागों में दिखाई पड़ती है। परन्तु वर्तमान संदर्भ में भारतीय समाज संरचना के अनुसार सत्ता, अवसर और धन का वितरण नहीं है, जिससे समाज में आर्थिक विषमता और जातीय कटुता का वातावरण बना हुआ है। एक ही वर्ग अथवा जाति का वर्चस्व विभिन्न क्षेत्रों में है। यह भारत के विकास और समृद्धि में बाधक है। 15 प्रतिशत वाला वर्ग सत्ता, सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के शीर्ष पर बैठा हुआ है। इनके पास देश का 85 प्रतिशत साधन-संसाधन गिरवी पड़ा है, जबकि 85 प्रतिशत वाले बहुसंख्यक समाज के हिस्से में केवल 15 प्रतिशत ही गुज़ारे के निमित्त साधन-संसाधन हैं। इसके कारण देश में आर्थिक गैर-बराबरी की स्थिति बनी हुई है। यही आर्थिक

गैर-बराबरी भारत के सर्वांगीण विकास से रोड़ा बनी हुई है तथा कई समस्याओं को जन्म दे रही है।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इस देश में बहुजन जनप्रतिनिधि स्वार्थवश समझौतावादी हो गए हैं : सदन में उनका आंख, कान और मुंह बंद रहता है। एक समझौतावादी कभी क्रांति नहीं कर सकता। परन्तु बाबासाहेब कहते हैं कि बुद्धिजीवी वर्ग समाज को दिशानिर्देश दे सकता है, उन्हें मार्गदर्शन कर सकता है तथा समाज के परिवर्तन में अहम भूमिका निभा सकता है, बशर्ते कि वह कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार हो। इसलिए बहुजन बुद्धिजीवियों को अपना धर्म निभाना चाहिए। बहुजन बुद्धिजीवी 13 प्वाइंट रोस्टर के खिलाफ अपनी ताकत दिखाकर भविष्य की उम्मीद जगा दिये हैं। ताकत दिखाने के बाद अब बहुजन बुद्धिजीवी जनशक्ति तैयार करें ताकि जनक्रांति हो सके। जनक्रांति से बड़ी-बड़ी सत्ता घुटनों के बल आ जाती है। 1789 में फ्रांस और 2011 में मिश्र और लीबिया की जनक्रांति सर्वविदित है।

भारत में आर्थिक विषमता काफी ख़तरनाक स्तर पर पहुँच चुकी है जो विद्रोह को आमंत्रित करती प्रतीत हो रही है। विश्व-प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार विजेता अर्मत्य सेन ने अपनी पुस्तक **'आर्थिक विषमताएँ'** में लिखा है कि 'विषमता और विद्रोह में बहुत निकट संबंध है। विषमता की अनुभूति किसी भी समाज में विद्रोह के स्वर मुखर कर सकती है।' भारत की आर्थिक विषमता इसी विद्रोह लायक स्थिति में हजारों वर्षों से है। जिस दिन बहुजनों में विद्रोह की ज्वाला भड़केगी, आर्थिक विषमता स्वाहा हो जायेगी। अर्थिक विषमता को स्वाहा करने के लिये **डाइवर्सिटी** की चिंगारी को ज्वाला में परिवर्तित करने की आवश्यकता है।

भारत में जनक्रांति लायक पूरी तरह से माहौल तैयार है। 1 जनवरी, 2018 को कोरेगांव और 2 अप्रैल 2018 को पूरे देश में बहुजन क्रांति का ट्रेलर भारत देख चुका है। अब 5 मार्च, 2019 का भारत बंद भी देख लिया है। इन प्रयोगों के बाद अब बहुजन शक्ति को टुकड़ों में आरक्षण की लड़ाई लड़ने के बजाय एक साथ सर्वव्यापी आरक्षण के लिए संघर्ष का मन बनाना होगा। इससे भी बड़ी बात यह करनी है कि प्रत्येक बहुजन बुद्धिजीवी, लेखक, अधिकारी, शिक्षक, अधिवक्ता इस महासंघर्ष के लिए विद्यार्थियों, युवकों, ग्रामीणों, झोपड़पट्टीयों और स्लम बस्तियों के वाशिंदों को मानसिक और बौद्धिक रूप से तैयार करे : उन्हें प्रशिक्षित करने का महाअभियान शुरू करे।

संदर्भ

1. कांशीराम के साक्षत्कार-सं.-ए.आर. अकेला, पृ. 126
2. ....वही...............................पृ. 126
3. रिजर्वेशन पॉलिसी : इट्स रिलेवेन्स इन मॉडर्न इंडिया-डॉ. राम समुझ, पृ.

(लेखक चार दर्जन किताबों के लेखक एवं पेशे से चिकित्सक हैं। संपर्क : 9006896706)